'स भक्तः प्राकृतः स्मृतः' इस श्लोक में 'प्राकृत' का अर्थ है– जिसने अभी भक्ति प्रारम्भ की है तथा धीरे–धीरे उत्तम भक्त हो जायगा–श्रीधरस्वामी का यह मत है।

'यद्धर्मः'–जिस धर्म में भक्त की निष्ठा है, 'यादृशः' से जैसा उनका स्वभाव है। 'यथा चरति' से जिस प्रकार उनका आचरण होता है तथा 'यद् ब्रूते' इससे भक्त क्या बोलते हैं— इत्यादि प्रश्न किये गये हैं 'सर्वभूतेषु यः पश्येत्' इस श्लोक से 'स भक्तः प्राकृतः स्मृतः'–इन तीन श्लोकों द्वारा 'यद् धर्मः' इस श्लोक में पूछे गये प्रश्नों में से एक का उत्तर दिया गया है। 'गृहीत्वापि' इत्यादि तीन श्लोकों से द्वेष, हर्ष, मोह, काम आदि विकारों से रहित होना ही भक्त का स्वरूप तथा आचरण कहा गया है। 'यथा चरति' इस श्लोक का उत्तर दिया गया है। 'यैर्लिङ्गैर्भगवत्प्रियः'— जिन चिह्नों से भक्त भगवान् को प्रिय लगते हैं इस प्रश्न का उतर 'न यस्य' इस श्लोक से दिया है 'न यस्य स्वः परः' इत्यादि तीन श्लोकों द्वारा 'यादृशः' इस श्लोक का उत्तर दिया गया है। 'यद् ब्रूते' भक्त क्या बोलते हैं– इस प्रश्न का उत्तर यद्यपि स्पष्ट नहीं है किन्तु श्रीधरस्वामी प्रभृति टीकाकारों ने लिखा है कि भक्त श्रीहरि के नाम ही बोलते हैं। पूर्व के अध्याय में भी 'गीतानि नामानि' 'एवं व्रतः स्व प्रियनाम कीर्त्या' आदि श्लोकों से भक्तों के द्वारा श्रीहरिनाम के उच्चारण का स्पष्ट उल्लेख है।

श्रीसुदर्शनसूरिजी कहते हैं—'यद् धर्म' से भगवान् के प्रति सर्वकर्मसमर्पण धर्म भागवतों का कहा गया है। 'चरति' का अर्थ

है-भक्त भगवान् के उच्छिष्ट प्रसाद का भक्षण करते हैं। 'चर-गतिभक्षणयोः' इस धातु से निष्पन्न 'चरति' का अर्थ भक्षण होता है। गत्यर्थक चर धातु के अनुसार भक्त क्या जानते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं— भक्त तत्वत्रय मन्त्र तथा भगवान् के गुणों को भलीभाँति जानते हैं। भक्त क्या चिह्न धारण करते हैं? इसका उत्तर है-भक्त शङ्ख, चक्र, उर्ध्वपुण्ड तथा तुलसी की युगल कण्ठी धारण करते हैं तथा पाञ्चरात्र आगम के अनुसार समस्त भागवतों के लक्षणों से सम्पन्न रहते हैं। 'विसृजति' इस श्लोक से पूर्व में कहे गये समस्त लक्षणों का सारभाग कहा गया है— ऐसा श्रीधरस्वामी आदि अनेक टीकाकारों ने लिखा है।

पूर्वोक्त भक्तों के समस्त लक्षण भक्त शिरोमणि श्रीहनुमानजी में विद्यमान है अतः भागवतकार ने श्रीहनुमान्जी को 'परमभागवत कहा है।

'हनुमान्'— उत्कृष्ट एवं प्रशस्त हनु से युक्त होने के कारण श्रीमन्मारुतनन्दनजी का नाम हनुमान् पड़ा है। यहाँ प्रशस्त अर्थ में मतुप् प्रत्यय है। श्रीरामायण में इन्द्र ने हनुमान् नामकरण करते समय कहा—मेरे हाथसे छुटे हुये वज्रसे इनका हनु (ठोढ़ी) भंग हुआ है अतः ये वानर श्रेष्ठ हनुमान् के नाम से संसार में प्रसिद्ध होंगे।

महर्षि श्रीअगस्त्यजी के समक्ष भगवान् श्रीराघवेन्द्र ने निजमुख से श्रीहनुमान्जी के यश का गान किया है। प्रभु ने हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक महर्षि से कहा- मुनिराज ! वाली तथा

रावण के वल की तुलना कठिन है, परन्तु मेरे विचार से तो इन दोनों का बल भी श्रीहनुमान्जी के वल की बराबरी नहीं कर सकता था। शूरता, दक्षता, वल, धैर्य, बुद्धिमता, नीति, पराक्रम तथा प्रभाव-इन सभी सद्गुणों ने श्रीहनुमान्जी के अभ्यन्तर घर कर रक्खा है। युद्ध में हनुमान्जो के जो पराक्रम देखे गये हैं, वैसे वीरतापूर्ण कर्म न तो काल के, न इन्द्र के, न वरुण के, न विष्णु भगवान् के ही सुने जाते हैं। मुनिराज! मैंने इन्हीं के बाहुबल से विभीषण के लिये लङ्का, शत्रुओं पर विजय, श्रीअयोध्याजी का राज्य तथा श्रीसीता-लक्ष्मण मित्र एवं वन्धुजनों को प्राप्त किया है। यदि वानरराज सुग्रीव के सखा श्रीहनुमान्जी नहीं मिलते. तो श्रीजानकीजी का समाचार लाने में कौन समर्थ हो सकता था? श्रीराघवेन्द्र की जिज्ञासा करने पर महर्षि श्रीअगस्त्यजी ने प्रभ को विस्तार पूर्वक श्रीहनुमान्जी के चरित सुनाये। श्रीहनुमच्चरित का उपसंहार करते हुये महर्षि ने कहा-संसार में ऐसा कौन है जो पराक्रम, उत्साह, बुद्धि, प्रताप, सुशीलता, मधुरता, नीति-अनीति के विवेक, गम्भीरता, चतुरता, उत्तम बल तथा धैर्य में श्रीहनुमान्जी से उत्कृष्ट हो। इन असाधारण शक्ति सम्पन्न कपि श्रेष्ठ श्रीहनुमान्जी ने व्याकरण शास्त्र का अध्ययन करने के लिये सूर्य की ओर मुख रखकर, उनके आगे-आगे उदयाचल से अस्ताचल तक चलते हुये महान् ग्रन्थ का स्वाध्याय किया। इन्होंने सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, महाभाष्य तथा संग्रह-इन सब का भलीभांति अध्ययन किया है। अन्य सभी शास्त्रों के ज्ञान तथा छन्दः

शास्त्र के अध्ययन में भी इनकी समानता करने वाला अन्य कोई विद्वान् नहीं है। किष्किन्धाकाण्ड में इनके पाण्डित्य की प्रशंसा स्वयं श्रीराघवेन्द्र ने की है। श्रीहनुमान् जी के भाषण सुनकर प्रभु ने श्रीलक्ष्मणकुमार से कहा—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद में पूर्ण निष्णात हुये विना कोई इस प्रकार भाषण नहीं कर सकता है। निश्चय ही इन्होंने समग्र व्याकरण शास्त्र का अनेक बार श्रवण किया है क्योंकि इतने विस्तृत भाषण करने के पश्चात् भी उनके मुख से एक भी अशुद्ध शब्द नहीं निकला। इन्होंने केवल वेदों का ही स्वाध्याय नहीं किया किन्तु वेद के अङ्गभूत व्याकरण आदि शास्त्रों का भी अध्ययन किया है। इन्होंने शिक्षा-शास्त्र का भी सम्यक् अध्ययन किया है। इनके मुख, नेत्र, ललाट, भृकुटी एवं अन्य किसी भी अंग में कोई दोष नहीं दीख पड़ा। इन्होंने अल्पकाल में ही बड़ी स्पष्टता से अपना अभि-प्राय प्रकट किया है। उसे समझने में कोई कठिनाई नहीं हुई। रुक-रुक कर अथवा शब्दों या अक्षरों को तोड़-मरोड़ कर किसी ऐसे वाक्य का उच्चारण नहीं किया है, जो श्रवण में कर्ण-कटु हो। इनकी वाणी हृदय में मध्यमारूप से स्थित है तथा कंठ में वैखरीरूप में प्रकट होती है, अतः वार्तालाप के समय इनका स्वर न बहुत धीमा रहा न बहुत ऊँचा। मध्यम स्वर में ही इन्होंने सब बातें कही हैं। व्याकरण के नियमानुकूल शुद्ध संस्कार सम्पन्न, शब्दोच्चारण की शास्त्रीय परिपाटी से युक्त, अद्भुत, धाराप्रवाह विना रुके तथा हृदय को आनन्द प्रदान करने वाली

वाणी का उच्चारण इन्होंने किया है। हृदय कण्ठ तथा मूर्धा इन तीनों स्थानों द्वारा स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होने वाली इनकी इस विचित्र वाणी को सुनकर किसका चित्त प्रसन्न न होगा। वध करने के लिये तलवार उठाये हुये शत्रु का हृदय भी इस अद्भुत वाणी से बदल जायगा।

युद्धकाण्ड में भी जगज्जननी श्रीजानकीजी ने श्रीहनुमान्‌जी को बुद्धि के आठ अंशों से युक्त कहा है- समस्त लक्षणों से सम्पन्न, माधुर्य गुण से विभूषित, बुद्धि के आठ अङ्गों से युक्त आपही ऐसी वाणी बोल सकते हैं। जिस प्रकार श्रीराघवेन्द्र ने कहा कि 'बहुत देर तक वार्तालाप करने पर भी इनके मुख से एक भी अपशब्द नहीं निकला' उसी प्रकार श्रीमैथिली ने भी इनकी वाणी को 'अतिलक्षण सम्पन्न' कहा है। ग्रहण, धारण, स्मरण, प्रतिपादन, ऊहापोह, अर्थ विज्ञान तथा तत्त्व ज्ञान—ये बुद्धि के आठ गुण हैं।

श्रीमद्‌रामायण में अनेक स्थलों में श्रीहनुमान्‌जी के बल, पराक्रम, बुद्धि आदि की प्रशंसा प्रभु ने की है इनके उपकारों का स्मरण करते हुये प्रभु ने कहा है—हनुमान्‌जी ! तुमने जो उपकार किये हैं, उनमें से एक-एक के लिये मैं अपने प्राण न्यौछावर कर सकता हूँ फिर भी तुम्हारे उपकार शेष रह जायेंगे अतः उन उपकारों के लिये मैं अनन्तकाल के लिये ऋणी ही रह जाऊँगा। कपिश्रेष्ठ ! मैं तो यही चाहता हूँ कि तुमने जितने उपकार किये हैं वे सभी मेरे शरीर में ही पच जायँ, उनका बदला चुकाने का

मुझे कभी अवसर ही न मिले क्योंकि पुरुष में प्रत्युपकार प्राप्त करने की योग्यता आपत्तिकाल में ही आती है। मैं नहीं चाहता कि तुम कभी भी संकटमें पड़ो तथा मैं तुम्हारे उपकार का बदला चुकाऊँ। न तो तुमको कभी आपत्ति आयेगी न हम प्रत्युपकार कर सकेंगे अतः ऋणी बन कर ही मैं सदा रहूँगा। न केवल मैं ऋणी रहूँगा किन्तु श्रीसीता लक्ष्मण भरत आदि के सहित मैं ऋणी रहूँगा। श्रीकिशोरीजी के सन्देश सुनाकर श्रीराम को, श्री-राघवेन्द्र के सन्देश सुनाकर श्रीकिशोरीजी को, सञ्जीवनी बूटी प्रदान कर श्रीलक्ष्मणकुमार को तथा श्रीसीतारामजी के सन्देश सुनाकर श्रीभरतलालजी को श्रीहनुमान्जी ने उपकृत किया। इस प्रकार भक्तों-परिकरों के साथ श्रीहनुमान्जी के प्रभु ऋणी हो गये।

युद्धकाण्ड में प्रभु ने कहा—आज श्रीहनुमान्जी ने श्री-किशोरीजी का समाचार लाकर- उन्हें अपनी आँखों से देखकर धर्म के अनुसार मेरी, लक्ष्मणकुमार तथा समस्त रघुवंश की भी रक्षा की है। 'धर्मतः' में सप्तमी के अर्थ में तसि प्रत्यय है। श्री-हनुमान्जी ने हम सबको धर्म में प्रतिष्ठित किया- यह अर्थ है। अधर्म से बचाना ही यहाँ धर्म में प्रतिष्ठित करना है। यदि हनुमान्जी श्रीवैदेही का दर्शन कर उनका समाचार नहीं सुनाते तो मैं जीवन का परित्याग कर देता, मेरे वियोग में श्री-लक्ष्मण आदि मेरे भ्रातागण भी जीवित नहीं रहते, इस प्रकार आत्महत्या का दोष सभी को प्राप्त हो जाता। अथवा श्रीवैदेही

का दर्शनकर हम सबको अपवाद से मुक्त कर दिया। इस प्रकार हनुमान्‌जी का कार्य हम सबको सुख प्रदान कर रहा है किन्तु उनका मैं कोई भी प्रत्युपकार नहीं कर सका यह विषाद श्रीप्रिया-सन्देश श्रवण जनित आनन्द को भी ढक कर सन्ताप दे रहा है।

'इदन्तु'- इस श्लोक से इसी विषाद का वर्णन करते हैं:- श्रीप्रिया के समाचार सुनाने वाले श्रीहनुमान्‌जी के स्वरूपानुरूप प्रत्युपकार योग्य कोई भी वस्तु मेरे पास नही है अतः मेरे हृदय को यह सन्ताप व्याकुल कर रहा है। वह सन्ताप सर्वस्वदान के समान उपकार से ही शान्त होगा। इस समय और तो कोई वस्तु सम्भव नहीं है अतः मेरा यह आलिङ्गन ही सर्वस्वदान का प्रतिनिधित्व करे। यदि मैं अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष पर्यन्त पुरुषार्थ चतुष्टय का भी दान कर दूँ तब भी सर्वस्वदान की तुलना में वे दान समुचित नहीं हो सकेंगे अतः मेरे दिव्यमङ्गलविग्रह का आलिङ्गन ही इस समय सर्वस्वदान के योग्य वस्तु प्रतीत हो रही है- यह आलिङ्गन ही इस समय सर्वस्वदान का प्रतिनिधित्व करे:-'एष सर्वस्वभूतस्तु'—उपकार करने का यही काल है अतः मेरा आलिङ्गन ही सर्वस्वदान का प्रतिनिधि हो। मैं अपनी इच्छा से दिव्यमङ्गलमयविग्रह धारण करता हूँ अतः मेरा यह विग्रह मेरा भी सीमारहित भोग्य वस्तु है। लोक में जो प्रिय वस्तु होती है वही प्रिय को दी जाती है। अन्य वस्तु को देने में यह खेद बना रहेगा कि अमुक वस्तु नहीं दी अतः न्यूनता बनी रहेगी, श्रीविग्रह के दान से सर्वस्वदान हो जायगा अतः अमुक वस्तु नहीं दी यह न्यूनता समाप्त हो जायगी क्योंकि मेरा श्रीविग्रह सबका आश्रय

है। अतः इसके प्रदान करनेपर सभी वस्तुएँ प्राप्त हो जाएँगी।। अमृतपान करने वालों को तृण (घास) भक्षण के लिये नहीं देना चाहिये। श्रीहनुमान्जी ने प्रभु से कहा है कि राजाधिराज! मेरा परम स्नेह एकरस आप में बना रहे। श्रीविग्रह में परम अनुराग रखने वाले श्रीहनुमान्जी को श्रीविग्रह ही प्रदान करना चाहिए। अभी मुझे इनको कुछ देने का समय प्राप्त हुआ है, ये तो मुझसे कुछ भी नहीं चाहते हैं किन्तु मैं इन्हें कुछ देने के लिए सदा उत्कण्ठित रहा। श्रीविग्रह के आलिङ्गन का प्रतिषेध ये नहीं कर सकते अतः अपने श्रीविग्रह का आलिङ्गन प्रदान कर रहा हूँ। श्रीहनुमान्जी उदारशिरोमणि हैं! श्रीमिथिलेश राज-किशोरीजीने अशोकवाटिका में अपने प्राणों का परित्याग करने का संकल्प कर लिया था। इधर श्रीराघवेन्द्र भी समुद्र तट पर अपने प्राणों का परित्याग करने के लिए उद्यत थे। ऐसी दशा में श्रीराघवेन्द्र का सन्देश सुनाकर श्रीमैथिली के, श्रीमैथिली का संदेश सुनाकर श्रीहनुमान्जीने श्रीराघवेन्द्र के श्रीविग्रह की रक्षा की। इस प्रकार मेरे तथा मेरी प्रिया दोनों के श्रीविग्रह की इन्होंने रक्षा की। प्रभु कहते हैं दो शरीर की रक्षा करने वाले श्रीहनुमानजी को एक शरीर का दान क्या उचित है? ऐसा कह कर प्रभु ने श्रीहनुमान्जी को आलिङ्गन प्रदान किया।

श्रीहनुमान्जी को जब प्रभु ने अपने हृदय से लगाया तब हर्षातिरेक से उनके रोम-रोम पुलकित हो गये थे। महर्षिवाल्मीकि ने इस प्रसङ्ग का अत्यन्त सरसता के साथ विवेचन किया है।

श्रीमद्वाल्मीकिरामायण में श्रीहनुमच्चरित का सम्यक् रसास्वादन करना चाहिये ।

सह किम्पुरुषैः— किंपुरुष देशवासी किन्नरों के साथ श्रीहनुमान्जी श्रीसीतारामजी की उपासना करते हैं। भक्तों के साथ भगवान् की उपासना करनी चाहिये इसी सिद्धान्त की ओर यहाँ संकेत किया गया है ।

अविरत भक्तिः--अविरल भक्ति के साथ प्रभु की उपासना श्रीहनुमान्जी करते हैं । लोक-परलोक के भोगों का परित्याग कर भगवान्में मन लगाने का नाम भक्ति है। सब उपाधियों से मुक्त भगवद्विषयक होने से निर्मल इन्द्रियों से भगवान् के सेवन का नाम भक्ति है—इत्यादि श्रुति-स्मृतियों में ऐहिक-पारलौकिक भोगों से विरक्त होकर निष्काम भाव से भगवान् में मन लगाने का नाम भक्ति है । श्रीमद्भागवत में भगवान् कपिल ने भक्ति के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया है--

भगवान् बोले--माताजी ! जिसका चित्त एकमात्र भगवान् में लग गया है ऐसे मनुष्य की वेदविहित समस्त कर्म करने वाली तथा विषयों का ज्ञान कराने वाली इन्द्रियों तथा उनके अधिष्ठाता देवताओं की जो विशुद्ध सत्वस्वरूप भगवान् के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति है वही भगवान् की अहैतुकी भक्ति है । यह मुक्तिसे भी श्रेष्ठ है क्योंकि जिस प्रकार जठरानल खाये हुए अन्न को भस्म कर डालता है उसी प्रकार यह भक्ति भी शीघ्र ही कर्म

संस्कार के भण्डाररूप लिङ्ग शरीर को नष्ट कर देती है। मेरे गुणों के श्रवणमात्र से मुझ सर्वान्तर्यामी पुरुषोत्तम में समुद्र के प्रति जाने वाले गंगा के प्रवाह के समान, मन की अविच्छिन्न गति हो जाना तथा अकारण एवं अनन्य भक्तिभाव होना मेरे निर्गुण भक्तियोग का लक्षण कहा जाता है। ऐसे भक्तजन मेरी सेवा के अतिरिक्त सालोक्य (समान लोक की प्राप्ति) सार्ष्टि (समान ऐश्वर्य) सामीप्य (मेरी समीपता) सारूप्य (मेरे समान स्व-रूप की प्राप्ति) तथा सायुज्य एकता आदि मोक्ष को दिये जाने पर भी ग्रहण नहीं करते हैं। अतः यह अन्तिम भक्तियोग ही सर्वश्रेष्ठ है जिसके द्वारा मनुष्य तीनों गुणों को पारकर मेरे समान हो जाता है। तैलधारा की भाँति अखण्ड स्मरण को ही पूर्वाचार्यों ने भक्ति का वास्तविक स्वरूप कहा है।

भगवान् को छोड़कर अन्य वस्तु का-विजातीय स्मरण का जहाँ अभाव हो वही अविरल भक्ति है। श्रीमद्रामायण में श्री-हनुमान्जी ने ऐसी ही भक्ति की याचना श्रीराघवेन्द्र से की है-'स्नेहो मे परमो राजन्' हे राजाधिराज! आप में मेरा उत्कृष्ट स्नेह निरन्तर बना रहे। आपको छोड़कर मेरा भाव एक क्षण के लिये भी अन्यत्र नहीं जाय। जिस प्रकार प्रियतम की प्रीति प्रिया में एकरस बनी रहती है वैसी प्रीति आप में बनी रहे। लोक-परलोक के एकमात्र आश्रय प्रभु में उपास्य बुद्धि का नाम यहाँ भक्ति है। जिस प्रकार जल के बिना मछली एक क्षण भी जीवित न रहे उसी प्रकार आपके अधीन मेरा जीवन हो। अन्य

विषय की ओर मेरा भाव क्षण भर के लिये भी नहीं जाय। मित्र विषयक प्रीति स्नेह तथा स्वामी के विषय में प्रीति भक्ति कही जाती है–ऐसा श्रीगोविन्दराज का मत है।

उपास्ते— इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जी लक्ष्मणाग्रज श्री-सीताभिराम श्रीराम की उपासना करते हैं। उपासना के द्वारा ही भगवान् की प्राप्ति होती है इस सिद्धान्त का यहाँ प्रतिपादन किया गया है। 'विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत' इस श्रुति में ज्ञानके पश्चात् उपासना कही गई है।

स्वामी श्रीरामानुजाचार्यजी ने भी ब्रह्मसूत्र के समन्वय अधिकरणमें इस विषय का प्रतिपादन किया है। जगत् के कारण रूप तथा वेदान्तवेद्य परब्रह्म की प्राप्ति कैसे होगी? इस जिज्ञासा का समाधान करते हुये आचार्यचरण ने कहा है–'ब्रह्मवेत्ता पर-मात्माको प्राप्त करता है। परमात्मा की उपासना करनी चाहिये' इत्यादि श्रुतियों में वेदन आदि शब्दों से उपासना को ही भगवान् की प्राप्ति में सर्वश्रेष्ठ साधन कहा है।

जिस प्रकार 'अपने घर में खजाना है' इस वाक्य को सुन कर किसी धनहीन सज्जन को प्रसन्नता होती है तथा तृप्ति भी होती है। पश्चात् उस निधि (खजाना) की प्राप्ति के लिये लोग प्रयास करते हैं। इस सम्बन्ध में आचार्य ने एक आख्यान इस प्रकार लिखा है—

कोई राजकुमार बालकों के साथ क्रीड़ा में आसक्त होकर राजमहल से निकल गया तथा कुछ दूर जाकर मार्ग भूल गया

एवं अपने घर नहीं लौट सका। इधर राजा को विश्वास हो गया कि मेरा पुत्र नष्ट हो गया। उधर राजकुमार को भी यह ज्ञान नहीं था कि मेरे पिता राजा हैं। इस प्रकार राजा तथा राजकुमार दोनों एक दूसरे से दूर हो गये। संयोगसे एक वेदज्ञ ऋषि ने उस राजकुमार का पालन-पोषण किया तथा उसे समस्त वेद शास्त्रों का ज्ञान करा दिया। वह राजकुमार षोडश वर्ष का हो गया तथा समस्त शुभगुणों से सम्पन्न हो गया। मुनि ने राजकुमार से कहा- तुम्हारे पिता समस्त लोकों के स्वामी हैं तथा गाम्भीर्य-औदार्य-वात्सल्य-सौशील्य-वीर्य-पराक्रम आदि दिव्य-गुणों से सम्पन्न है। अपने नष्ट पुत्र का ही वह अन्वेषण कर रहा है। वह तुम्हारी ही प्रतिक्षा करता हुआ अपनी राजधानी में विद्यमान है।

इस प्रकार मुनि की वाणी सुनकर राजकुमार अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसको जब यह ज्ञात हुआ कि मेरे पिता सभी लोकों के अधिपति हैं तथा सभी सम्पत्तियों से सम्पन्न हैं तब उसकी प्रसन्नता अत्यधिक बढ़ गई। उधर राजा भी अपने पुत्र को रोग-रहित, जीवित, परम सुन्दर, सर्वशास्त्र सम्पन्न जानकर कृतकृत्य हो गया मानों उसने सभी पुरुषार्थ प्राप्त कर लिये। पश्चात् वह राजा अपने राजकुमार की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है पुनः दोनों परस्पर मिलते हैं।

इस आख्यायिका का सम्बन्ध श्रीलवकुशजी से है जो महर्षि वाल्मीकि के द्वारा पालित होकर राजाधिराज श्रीराम से मिले।

इस कथा से भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि ज्ञान के पश्चात् जब उपासना की जाती है तभी परतत्त्व का साक्षात्कार होता है। अन्यथा परतत्त्व की प्राप्ति दुर्लभ है।

श्रीमद्भागवत में स्थल-स्थल पर ज्ञान आदि साधनों का भक्ति में ही तात्पर्य स्वीकार किया गया है। एकादश स्कन्ध में कहा गया है कि 'जो वस्तु कर्म ज्ञान वैराग्य आदि साधनों से प्राप्त होती है वह केवल भक्ति से ही प्राप्त हो जाती है।' 'कल्याणों के स्रोत भक्ति को छोड़कर जो केवल ज्ञान का आश्रय लेते हैं उन्हें क्लेश ही हाथ लगता है। ज्ञान में प्रयास को छोड़कर जो भगवत्कथा का सेवन करते हैं वे भगवान् को वश में कर लेते हैं। यद्यपि ज्ञान के द्वारा संसार को ब्रह्म में कल्पित मानकर ज्ञानी ब्रह्मतत्त्व का साक्षात्कार करने का प्रयास करते हैं फिर भी प्रभु के चरणकमलों की कृपा से ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। इत्यादि स्थलों में अन्वय के द्वारा भक्ति का उत्कर्ष कहा गया है। व्यतिरेक के द्वारा भी भक्ति से रहित सभी साधनों की निष्फलता कही गई है। प्रह्लादजी ने कहा है—

भगवान् को प्रसन्न करने के लिए ब्राह्मण, देवता अथवा ऋषि होना, सदाचार तथा विविध ज्ञानों से सम्पन्न होना एवं दान,तप, यज्ञ शारीरिक तथा मानसिक शौच एवं बड़े बड़े व्रतों का अनुष्ठान पर्याप्त नहीं है। भगवान् केवल निष्काम प्रेम भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं। अन्य सभी साधन तो विडम्बना मात्र है। भगवान् की भक्ति से रहित ब्रह्मज्ञान की भी शोभा नहीं है फिर

भक्तिरहित कर्म को शोभा कैसे सम्भव हो सकती है ? भगवान् यशोदानन्दन श्रीकृष्ण जिस प्रकार भक्तों के लिये सुलभ हैं उस प्रकार कर्मकाण्डियों तथा ज्ञानियों केलिये सुलभ नहीं हैं। भागवत में भी ज्ञानियों में अग्रणी श्रीहनुमान्जी श्रीसीतारामजी की उपासना कर रहे हैं। भक्तिरसरसास्वादन के लिये ही श्रीमद्भागवत का आविर्भाव हुआ है यह विद्वानों को विदित ही है। जिस प्रकार भगवान् में मनुष्य की भक्ति हो ऐसा विचार कर भागवत का विस्तार करें ऐसी आज्ञा ब्रह्माजी ने श्रीनारदजी को दी है। श्रीहरिलीला प्रधान भागवत का विस्तार करें। भक्तिरस के बाधक केवल तत्त्वज्ञान का वर्णन नहीं करें ऐसी श्रीधरस्वामी ने इस श्लोक की व्याख्या की है ॥ १ ॥

गन्धर्वगण भगवान् श्रीराघवेन्द्र की कथा का गान करते हैं तथा श्रीहनुमान्जी अपने प्रियतम प्रभु की परमकल्याणमयी कथा श्रवण करते हैं, तथा 'ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय' आगे कहे जाने वाले इस मन्त्र का उच्चारण करते हुये भगवान् की स्तुति करते हैं। श्रीधरस्वामी कहते हैं—भगवान् की कथा श्रवण करते समय श्रीहनुमान्जी ऐसा अनुभव करते हैं कि हम अपने स्वामी श्रीरामभद्र की कथा सुन रहे है। केवल भगवान् की कथा नहीं किन्तु अपने स्वामी भगवान् श्रीरामभद्र की कथा श्रवण करते हैं। श्रीतीर्थ कहते हैं कि भगवत् शब्द कभी-कभी पूज्य अर्थ में भी प्रयुक्त होता है अतः किसी पूज्य की कथा श्रवण करते हैं ऐसा सन्देह न हो जाय इसलिये भर्तृ शब्द का प्रयोग किया गया।

श्रीजीवगोस्वामी कहते हैं कि भगवान् की कथा की अपेक्षा अपने स्वामी की कथा में विशेष आनन्द है। श्रीहनुमान्जी भगवान् की कथा श्रवण करते समय अपने स्वामी भाव का भी मनन करते हैं अतः उन्हें अपार आनन्द प्राप्त होता है।

श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजी कहते हैं कि श्रीहनुमान्जी अपने स्वामी भगवान् श्रीराघवेन्द्र की ही कथा श्रवण करते हैं। श्रीनारद आदि महापुरुषों की भाँति अन्य अवतारों की कथा में इनका अनुराग नहीं है। श्रीनारद आदि महर्षिगण सभी अवतारों की कथाओं का श्रवण करते हैं किन्तु श्रीहनुमान्जी केवल श्रीसीतारामजी की ही कथा श्रवण करते हैं।

श्रीरामायण में श्रीहनुमान्जी ने प्रभु से वरदान माँगा है कि हम चिरकाल तक आपकी कथा श्रवण करते रहें। महाराज! आपके प्रति मेरा अलौकिक स्नेह सदा बना रहे। आपमें ही मेरी निश्चल भक्ति रहे। आपके अतिरिक्त और कहीं भी मेरा आन्तरिक अनुराग न हो। प्रभो! इस पृथ्वीपर जब तक श्रीरामकथा प्रचलित रहे तब तक निःसन्देह मेरे प्राण इस शरीर में बने रहें। रघुकुलनन्दनश्रेष्ठ श्रीराम ! आपका यह जो दिव्य चरित्र तथा कथा है इसे अप्सराएँ मुझे गाकर सुनाया करें। प्रभो ! आपके उस चरितामृत को सुनकर मैं अपनी उत्कण्ठा को उसी तरह दूर करता रहूँगा जैसे वायु बादलों की पंक्ति को उड़ाकर दूर ले जाती है।

श्रीहनुमान्‌जी ने प्रभु से कहा–प्रभो ! आपके कथामृत के रसास्वादन के प्रभाव से मेरे प्राण चिरकाल तक मेरे शरीर में बने रहेंगे। इससे स्पष्ट है कि भगवत्कथा श्रवणकाल में भक्तों का भगवान् के साथ नित्य संयोग बना रहता है। भगवान् की वेद स्तुति में कहा गया है–प्रभो! आपके स्वरूप का ज्ञान अत्यन्त कठिन है। उसी स्वरूप का ज्ञान कराने के लिये आपने अवतार धारण किया है। भगवन् ! अत्यन्त कठिन परमात्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कराने के लिये ही आप विविध प्रकार के अवतार ग्रहण करते हैं तथा उनके द्वारा ऐसी लीला करते हैं जो अमृत के महासागर से भी मधुर तथा मोहक होती हैं। जो लोग उनका सेवन करते हैं उनके समस्त श्रम दूर हो जाते हैं वे परमानन्द में मग्न हो जाते हैं। कुछ प्रेमी भक्त तो ऐसे होते हैं जो आपकी लीला कथाओं को छोड़कर मोक्ष की भी अभिलाषा नहीं करते, स्वर्ग आदि की तो बात ही क्या है। वे आपके चरणकमलों के प्रेमी परमहंसों के सत्संग में इतना सुख मानते हैं कि उसके लिये इस जीवन में प्राप्त अपनी घर गृहस्थी का भी परित्याग कर देते हैं।

श्रीधरस्वामी ने भी कहा है–आपके कथामृत सागर में आनन्द पूर्वक विहार करने वाले कुछ भाग्यशाली पुण्यात्मा जन चारों पुरुषार्थों को तृण के समान परित्याग कर देते हैं। इससे स्पष्ट है कि मोक्ष सुख से भी श्रीहरि कथा में अधिक सुख है। 'मुक्तात्मागण ब्रह्म के साथ परधाम में प्रभु के समस्त कल्याणमय

गुणों का ठीक-ठीक अनुभव करते हैं' इस श्रुति वाक्य में ब्रह्म में तृतीया विभक्ति है। व्याकरण शास्त्र के अनुसार अप्रधान में तृतीया विभक्ति होती है। इस प्रकार ब्रह्म से भी उनके गुणों की प्रधानता यहाँ कही गई है ऐसा पूर्वाचार्यों का अभिप्राय है।

पञ्चस्तवीकार कहते हैं--राघवेन्द्र ! आपने अपने अवतारकाल में न जाने कौन-कौनसे चमत्कारपूर्ण कल्याणमय दिव्य-गुणों का विस्तार कर दिया कि श्रीहनुमान्‌जी साकेत सुख का परित्याग कर आज तक आपके गुणों का ही श्रवण कर रहे हैं। श्रीहनुमान्‌जी की अलौकिक कथा भक्ति को देखकर श्रीराघवेन्द्र अपने सिंहासन से उठकर उनका आलिङ्गन करने लगे,तथा उनसे बोले- हनुमान्‌जी! जैसा आपने वरदान मांगा है वैसा ही होगा। जब तक इस लोक में मेरी कथा रहेगी तब तक आपकी कीर्ति तथा शरीर में प्राण भी रहेंगे। जब तक समस्त लोक रहेंगे तब तक मेरी कथा भी रहेगी।

श्रीहनुमान्‌जी ने गन्धर्व एव अप्सराओं से श्रीराम कथा-श्रवण की इच्छा प्रकट की है इससे स्पष्ट है कि गान्धर्व वेद के अनुकूल कथा श्रवण करना चाहते हैं। गन्धर्व एवं अप्सरागण षड्ज, ऋषभ, गन्धार आदि सप्तस्वरों से विभूषित एवं वीणा आदि यन्त्रों से युक्त श्रीराम कथा श्रीहनुमान्‌जी को सुनाते हैं, यह श्रीरामायण में स्पष्ट है।

श्रीरामायण के प्रथमगायक कुशलव ने मार्ग विधान की पद्धति से श्रीमद्वाल्मीकिरामायण का गान किया था यह प्रसिद्ध

है। प्राकृत भाषा के आश्रय से गाये जाने वाले गान 'देशी' गान कहा जाता है तथा संस्कृत भाषा के माध्यम से गाने योग्य गान को 'मार्ग' गान कहते हैं। देशी तथा मार्ग के भेद से गान दो प्रकार के होते हैं। मार्ग का गान सर्वत्र होता है, देशी का गान किसी देश विशेष में होता है। कुशलव दोनों भ्राता गन्धर्वशास्त्र मूर्च्छना स्थान आदि स्वरों के ज्ञाता थे- यह श्रीरामायण में स्पष्ट है।

राजकुमार कुश तथा लव दोनों भ्राता धर्मज्ञ तथा यशस्वी थे उनका स्वर अत्यन्त ही मधुर था तथा वे मुनि के आश्रम में ही रहते थे। उनकी धारणा शक्ति अद्भुत थी, तथा वे दोनों ही वेदों में पारंगत हो चुके थे। भगवान् वाल्मीकि ने उनकी ओर देखा तथा उन्हें सुयोग्य समझकर महर्षि ने वेदार्थ का विस्तार करने वाला श्रीसीताजी के महान् चरित्र से युक्त सम्पूर्ण रामायण महाकाव्य का अध्ययन कराया। वह महाकाव्य पढ़ने तथा गाने में भी मधुर तथा द्रुत मध्य विलम्बित इन तीनों गतियों से अन्वित-षड्ज आदि सातों स्वरों से युक्त, वीणा बजाकर तथा ताल के साथ गाने योग्य एवं शृङ्गार, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक तथा वीर आदि सभी रसों से अनुप्राणित है। दोनों भ्राता उस महाकाव्य को पढ़कर उसका गान करने लगे। वे दोनों गान्धर्व विद्या (संगीत शास्त्र) के तत्त्वज्ञ स्थान तथा मूर्च्छना के ज्ञाता मधुरस्वर से सम्पन्न एवं गन्धर्वों के समान मनोहररूप वाले थे।

श्रीमद्भागवत में भी श्रीहनुमान्जी आर्ष्टिषेण एवं गन्धर्वों के साथ अपने प्रियतम प्राणधन प्रभु श्रीराघवेन्द्र की परम कल्याणमयी कथा का श्रवण करतेहैं यह सुस्पष्ट है। इससे सूचित होता है कि श्रीहनुमान्जी स्वयं गान्धर्व शास्त्र के महान् पण्डित हैं। किष्किन्धाकाण्ड में श्रीहनुमान्जी को व्याकरण आदि अंगों के सहित चारों वेदों का ज्ञाता कहा गया है। अतएव श्रीहनुमान् जी के भाषण की प्रशंसा श्रीरामभद्र ने स्वयं की है यह पूर्व में कहा जा चुका है।

द्वापर के अन्त में भी श्रीहनुमान्जी श्रीराम कथा श्रवण कर रहे हैं यह महाभारत के वन पर्व में इस प्रकार वर्णित है— श्रीद्रौपदीजी की कामना पूर्त्यर्थ सौगन्धिक कमल लाने के लिये जब श्रीभीमजी गन्धमादन स्थित कदली वन में गये तब श्रीहनुमान्जीसे उनका समागम हुआ। दोनों का रमणीय सम्वाद हुआ। श्रीभीमजी के अभिमान को दूर करने के पश्चात् श्रीहनुमान्जी ने भीम की प्रार्थनापर समुद्र लंघनकालिक जब अपने उस विराटस्वरूप को प्रकट किया तब भीम भयभीत होगये। तदनन्तर श्रीहनुमान्जीने भीम को संक्षिप्तरूपसे समग्र श्रीरामचरित सुनाया। तत्पश्चात् श्रीभीम से मारुतनन्दन ने कहा— मैंने श्रीराघवेन्द्र से वरयाचना की, कि प्रभो ! जब तक आपकी कथा लोक में प्रचलित रहे तब तक मैं जीवित रहूँ—। प्रभु ने 'तथास्तु'— ऐसा ही होगा इस प्रकार कहा— भीम ! जगज्जननी श्रीजानकीजी की कृपासे मेरे समीप इच्छानुकूल सभी दिव्यभोग उपस्थित रहते हैं।

तात ! यहाँ गन्धर्व एवं अप्सराएँ श्रीरामचरित गान करते हुए मुझे रमण कराते रहते हैं। श्रीरामायण में श्रीरामकथा श्रवण के लिए श्रीहनुमान्जी ने प्रभु से वरदान मांगा तथा श्रीराघवेन्द्र ने उन्हें वर प्रदान किया यह पूर्व में ही कहा जा चुका है।

प्रभु ने कहा—कपिश्रेष्ठ ! आपने जो वरदान मांगा है उसकी पूर्ति अवश्य होगी, इसमें सन्देह नहीं। मेरी कथा जब तक लोक में प्रचलित रहेगी तब तक आपकी कीर्ति भी प्रचलित रहेगी साथ ही आपके शरीर में तब तक प्राण भी बने रहेंगे। श्रीरघुनन्दन ने कहा—ऐसी कीर्ति आज तक किसी को प्राप्त नहीं हुई। आज तक वेद शास्त्रोंमें समस्त साधनों का फल मेरा दर्शन ही कहा गया है किन्तु मेरे दर्शन को छोड़कर कथा श्रवण भक्ति की याचना किसी ने नहीं की। यद्यपि मेरी अपेक्षा मेरे गुणों की प्रधानता श्रुतिस्मृतियों में प्रतिपादित है तथापि मेरी सन्निधि को छोड़कर मेरी कथा के रस का रसास्वादन आजतक किसी ने नहीं किया। भविष्यकाल में सभी भक्त आपका अनुकरण करेंगे ऐसी कीर्ति आपने ही प्राप्त की। 'तब तक आपकी कीर्ति बनी रहेगी' श्रीरघुनन्दन के इस वचन का यही तात्पर्य है ॥ २ ॥

परम कल्याणमयी अपने स्वामी भगवान् श्रीराम की कथा श्रीहनुमान्जी श्रवण करते हैं यह वचन श्रवणभक्ति का सूचक है।

'ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय' इस मंत्र का जप उपाँशु विधि से करते हैं यह वचन कीर्तन भक्ति का सूचक है।

हम ॐकार स्वरूप, पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीराम को नमस्कार करते हैं, आप में महापुरुषों के समस्त लक्षण, शील

ओर आचरण विद्यमान हैं। आप बड़े ही संयतचित्त लोकाराधन तत्पर साधुता की परीक्षा के लिए कसौटी के समान और अत्यन्त ब्राह्मण भक्त है। ऐसे महापुरुष महाराज श्रीराम को हमारा पुनः पुनः प्रणाम है।

'ॐनमो भगवते उत्तमश्लोकाय' इस मंत्र की विशेष व्याख्या इस प्रकार की गई है—'ओम्, तत् सत्'—ये तीनों ब्रह्म के निर्देश कहे गये हैं। जिससे कोई वस्तु बतायी जाए उसका नाम निर्देश है नाम हैं। अतः यह ब्रह्म के तीन नाम हैं ऐसा वेदान्त में ब्रह्मज्ञानियों द्वारा स्वीकार किया गया है। इन्हीं तीन नामों से सृष्टि के आदिकाल में ब्राह्मण, वेद तथा यज्ञ आदि रचे गये। गीता के इस श्लोक की व्याख्या पूर्वाचार्यों के भाष्यों में देखने योग्य है। इस प्रकार 'ओम्' भगवान् का एक नाम है भगवान् ने अपने से पृथक् चित् (जीव) अचित् (माया) समस्त जगत् एवं नित्य विभूति (साकेत धाम) आदि को अपने शेष एवं भोग्य के रूप में अपने स्वभाव से ही स्वीकार कर रखा है। एकपाद विभूति, त्रिपादविभूति एवं जड़, चेतन समस्त जगत् के प्रभु एकमात्र स्वामी हैं ओंकार का यही अर्थ है। श्रीरामतापनी उपनिषद् में कहा गया है—अकार अक्षर से विश्व अवस्था के नियामक श्रीलक्ष्मणकुमार का बोध होता है। उकार अक्षर से तैजस अवस्था के नियामक श्रीशत्रुघ्नकुमार का तथा मकार से प्राज्ञ अवस्था के नियामक श्रीभरतजी का बोध होता है। प्रणव में अर्ध मात्रा ब्रह्मानन्द के एकमात्र विग्रह श्रीराम का वाचक

है। इस प्रकार इन मंत्रों से प्रणव के अकार, उकार, मकार, अर्ध मात्रा आदि का श्रीलक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्थाओं एवं इनके अभिमानी जीवों के नियामक कहे गये हैं। अतः ब्रह्मानन्द के एकमात्र विग्रह श्रीराम का तुरीयावस्था के समस्त जीवों का नियामक होना सुतरां सिद्ध हैं। आनन्द स्वरूप ब्रह्म ही है, विग्रह (शरीर) जिसका ऐसे श्रीराम ब्रह्मानन्दैकविग्रह कहे गये हैं। ब्रह्मानन्द विग्रह कहकर प्राकृत का निषेध किया गया है तथा उनके श्रीविग्रह को व्यापक तथा सुखस्वरूप कहा गया हैं। श्रीराघवेन्द्र का विग्रह ब्रह्मस्वरूप ही है। इस प्रकार उनमें शरीर शरीरी का भेद नहीं है यह सूचित किया गया। श्रीराम के स्वरूप विग्रह दोनों सच्चिदानन्द स्वरूप हैं यह श्रुति स्मृति में सर्वत्र प्रतिपादित है।

'श्रीराम सान्निध्यवशात्' इस मंत्र से श्रीराम से आलिङ्गित श्रीराम हृदयेश्वरी श्रीसीताजी का प्रतिपादन प्रणव के विन्दु द्वारा किया गया है जिस प्रकार प्रणव के अर्धमात्रा के सन्निकट विन्दु है उसी प्रकार श्रीराघवेन्द्र के अंक में विराजमान श्रीमैथिली हैं। तापनीय श्रुति कहती है-श्रीराम से संयुक्त श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजी जगत् को आनन्द देने वाली हैं तथा प्राणीमात्र की उत्पत्ति पालन तथा संहार करने वाली हैं। वह श्रीसीताजी भगवती छह ऐश्वर्य से सम्पन्न कही गयी हैं। वही मूल प्रकृति के नाम से जानी जाती हैं। अपने कटाक्ष से उत्पन्न जड़प्रकृति से महदादि विकारों को उत्पन्न करती हैं अतः वे प्रणवस्वरूपिणी हैं।

विशेष रूप से सृष्टि का निर्माण करती हैं अतः उन्हें ब्रह्मवादी मुनिजन प्रकृति भी कहते है। श्रीराम के पूर्व श्रीसीता शब्द का प्रयोग सर्वश्रेष्ठ भक्ति के विधान के लिए है क्योंकि भक्ति ही परम पुरुषार्थ है। यद्यपि अपने स्वभाव से वे जगत् मात्र को आनंद प्रदान करने वाली–जगदानन्ददायिनी हैं किन्तु विश्व, तैजस आदि अवस्थाओं से युक्त श्रीलक्ष्मण आदि के द्वारा नियाम्य जीवों की उत्पत्ति स्थिति संहार करने वाली हैं। मूल प्रकृति के नाम से भी जानी जाती हैं। ज्ञान शक्ति आदि छह ऐश्वर्यों से युक्त भगवती श्रीसीता जी जीव मात्र की आराध्या हैं। इस मंत्र में मूल प्रकृति शब्द जड़ प्रकृति का बोधक नहीं है क्योंकि 'हेमाभया' इस मन्त्र में श्रीमैथिली को चिद्रूपिणी कहा गया है। श्रीजनकनन्दिनी के कटाक्ष विक्षेप से मूलप्रकृति का प्रादुर्भाव होता है। ब्रह्मसूत्र में 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्' इस सूत्र में तथा 'वासुदेव परा प्रकृतिः' इस स्मृति वचन में भी भगवान् के सम्बन्ध में प्रकृति शब्द का प्रयोग देखा गया है। जिस प्रकार भगवान् प्रकृति से परे हैं उसी प्रकार श्रीसीताजी भी प्रकृति से परे हैं। इस विषय का प्रतिपादन अनेक बार कर चुके हैं। प्र पूर्वक णु स्तुतौ धातु से प्रणव की निष्पत्ति होती है। प्रणयते–प्रस्तूयते या सा प्रणवा। अपने कटाक्ष से उत्पन्न जड़प्रकृति को महदादि रूप में निष्पादन करने की सामर्थ्य प्रदान करती हैं, इसी कारण श्रीजानकीजी को यहां प्रणवा कहा गया है। प्रकर्षेण क्रियते अनयेति प्रकृतिः–विशेष-

रूप से सृष्टि आदि कार्य का सम्पादन करती हैं इसलिए उन्हें प्रकृति कहा जाता है। विश्व तैजस आदि के नियामक श्री लक्ष्मण आदि श्रीरामकैंकर्यपरायण होने के कारण उनके शेष हैं। अतः उनके नियाम्य जीव भी प्रभु के शेष ही हैं।

"उत्पत्ति स्थिति संहारकारिणी सर्वदेहिनाम्" इस मंत्र से जगत् की उत्पत्ति आदि करने वाली श्रीजानकीजी एवं श्रीरामजी समस्त जगत् के स्वामी हैं इस विषय का प्रतिपादन यहाँ किया गया है। क्योंकि ब्रह्म का साधारण लक्षण जगत्कारणत्व ही है। समस्त चराचर जगत् श्रीसीताविशिष्ट श्रीराम के शेषभूत हैं। न अपने हैं न अन्य के हैं। इस प्रकार जीवों के अन्य जीव रक्षक एवं प्राप्य नहीं हो सकते हैं जीवमात्र के स्वामी श्रीसीतारामजी ही हैं। अपनी रक्षा के लिये उन्हीं को साधन मानना चाहिए। प्रणव के अर्थों के बोधक मंत्रों का यही निष्कर्ष है। षडक्षर श्रीरामतारक मंत्र की भाँति उनके कार्यभूत प्रणव भी समस्त जगत् को श्रीरामजी का शेष बतलाता है।

इस प्रकार श्रीराममंत्र एवं प्रणव की एकवाक्यता हो जाती है। इसी प्रकार अन्यत्र भी प्रणव के तात्पर्य का निर्णय पूर्वोक्त प्रकार से ही करना चाहिए। यद्यपि प्रणव में श्रीजानकीजी का वाचक होना स्पष्ट नहीं है किन्तु श्रीरामजी से संयुक्त होने के कारण प्रणव के सन्निकट स्थित बिन्दु स्पष्ट उनका वाचक है। 'श्रीरामसान्निध्यवशात्' यह मंत्र ही इसमें प्रमाण है। जिस प्रकार श्रीसीतारामजी परस्पर संयुक्त रहते हैं उसी प्रकार

अर्धमात्रा के साथ बिन्दु भी परस्पर संयुक्त रहते हैं। बिन्दु और श्रीजानकीजी प्रत्येक जगत् के कारण हैं। श्रीरामजी के वाचक अर्धमात्रा द्वारा प्रणव का जगत्कारणत्व सिद्ध होने पर भी श्रीराम सन्निहित श्रीजानकीजी का ही जगत्कारणत्व इस श्रुति में प्रतिपादित है अतः श्रीरामवाचक अर्धमात्रा के सन्निकट श्रीजानकीवाचक बिन्दु द्वारा ही प्रणव का जगत्कारणत्व समझना चाहिये।

वेदावतार श्रीरामायण में भी श्रीरामजी को प्रणवस्वरूप कहा गया है। आप यज्ञ हैं, आप वषट्कार हैं तथा आप ही ओंकार हैं। ब्रह्माजी श्रीराघवेन्द्र से कहते हैं—हे परन्तप ! आपका आविर्भाव तथा तिरोभाव कोई नहीं जानता। आप कौन हैं ? इसका भी किसी को पता नहीं है। "ओम् नमो भगवते उत्तमश्लोकाय" इस मंत्र में नमः शब्द शरणागति का सूचक है। अनन्त जन्मों के संचित पापों के विनाश के लिये भगवत्पादारविन्द में नमस्कार करना ही शरणागति है।

ईशावास्योपनिषद् में "भूयिष्टान्ते नम उक्तिं विधेम" इस मंत्र में नमः शब्द से प्रपत्ति का ही विधान किया गया है। 'नमः' इस उक्ति मात्र से ही जीव प्रभु की शरण में पहुँच जाता है। महाभारत में भी कहा गया है कि द्रौपदी के साथ सभी पाण्डवों ने भगवान् को नमस्कार किया। यहाँ पर भी नमः शब्द से शरणागति का वर्णन माना जाता है। वेदावतार श्रीरामायण में भी श्रीमारुतनन्दन श्रीसुग्रीवजी को श्रीलक्ष्मण-

कुमार की प्रसन्नता के लिये प्रणति का ही उपदेश देते हैं। उन्होंने कहा—सुग्रीव! आपने प्रभु के कैंकर्य को भुला दिया अतः आपसे अपराध हो गया है अब श्री लक्ष्मणकुमार को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। यहाँ भगवान् के अपराध से मुक्त होने के लिए भगवान् के भक्त के प्रति बद्धाञ्जलि (शरणागत) होना ही सर्वोत्कृष्ट प्रायश्चित्त कहा गया है। यदि भगवान् का अपराध प्रमादवश बन जाए तो भक्त की **शरण** में जाने से जीव अपराध से मुक्त हो जाता है। आलवन्दार स्तोत्र में श्रीयामुनाचार्य स्वामीजी कहते हैं-- प्रभो! आपके श्रीचरणों के प्रति कभी भी किसी ने जैसे तैसे भी एक बार हाथ जोड़ दिया हो, उसी समय वह समस्त अमङ्गलों को नष्ट कर देता है तथा कभी भी क्षीण न होने वाले अक्षय पुण्य का अर्जन कर लेता है। श्रीरामायण में सर्वत्र नमः शब्द से शरणागति का वर्णन है।

'ॐ नमो भगवते' इस मन्त्र में नमः शब्द का अर्थ शरणागति है।

भगवते—श्रीहनुमान्जी जप करते समय उत्तमश्लोक भगवान् श्रीसीतारामजी को नमस्कार करते हैं। भगवद् शब्द का अर्थ 'भगवन्तमादिपुरुषम्' इस गद्य का अर्थ करते समय पूर्व में ही कहा जा चुका है। ब्रह्मा आदि उत्तम देवगण जिनकी स्तुति करते हैं उनका नाम उत्तम श्लोक है। इस अर्थ में श्लोक का अर्थ स्तवन है। श्लोक का अर्थ यश भी है— जिनका यश उत्तम

(असाधारण) है। श्रीजीवगोस्वामीजी महाराज कहते हैं–'नमो भगवते उत्तमश्लोकाय' इस मन्त्र में भगवते पद से ऐश्वर्य का वर्णन किया गया है तथा उत्तमश्लोक पद से माधुर्य का वर्णन किया गया है। प्रभु के चरित में ऐश्वर्य–माधुर्य दोनों पक्ष असा–धारण रूप से वर्णित हैं।

श्रीराम का यशोगान द्वापर के अन्त में भी मुनिगण सर्वत्र करते थे इस विषय का संकेत श्रीवेदव्यास ने श्रीभागवत में इस प्रकार किया है– भगवान् श्रीजानकीरमणजी का निर्मल यश समस्त पापों को नष्ट कर देने वाला है। वह इतना विस्तृत है कि दिग्गजों का श्यामल शरीर भी उसकी उज्ज्वलता से देदीप्यमान है। शिरोभूषण की भाँति प्रभु के यश को अपने अपने सिर पर धारण कर रखा है तभी तो उनके मस्तक उज्ज्वल हैं। आज भी बड़े–बड़े ऋषि महर्षि राजाओं की सभा में उसका गान करते रहते हैं। श्रीधरस्वामी, श्रीवीरराघव, श्रीविश्वनाथचक्रवर्ती आदि व्याख्याकार कहते हैं– 'यस्य यशो नृपाणां युधिष्ठिरादीणां सदस्सु ऋषयो मार्कण्डेयादयो गायन्ति' जिनके यश युधिष्ठिर आदि राजाओं की सभा में मार्कण्डेय आदि ऋषिगण आज भी गान कर रहे हैं। श्रीमद्भागवत में श्रीरामचरित का वर्णन संक्षेप में इसलिए है कि पूर्व में ही महर्षि वाल्मीकि ने श्रीरामचरित का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

महर्षि शुकदेवजी ने परीक्षित् से कहा– राजन्! तत्त्व–दर्शी वाल्मीकि आदि ऋषियों ने श्रीसीतापति श्रीरामचन्द्रजी के

गुणों का बिस्तारपूर्वक वर्णन किया है। तुमने बार-बार श्रवण भी किया है तथापि संक्षेप में श्रीरामचरित का मैं वर्णन करता हूं तुम श्रवण करो। भगवान् श्रीराम ने अपने पिता राजादशरथ के सत्य की रक्षा के लिए राज्य का त्याग कर दिया और वन-वन में भ्रमण करते रहे। उनके चरणारविन्द इतने सुकुमार थे कि परम सुकुमारी श्रीजानकीजी के कर-कमलों का स्पर्श भी उनसे सहन नहीं होता था। वे ही चरण जब वन में चलते-चलते थक जाते तब श्रीहनुमान् और श्रीलक्ष्मण उनकी सेवाकर थकावट दूर करते। शूर्पणखा के नाक कान काटकर विरूप कर देने के कारण उन्हें अपनी प्रियतमा श्रीजानकीजी का वियोग सहना पड़ा। इस वियोग के कारण क्रोधवश उनकी भौंहें तन गयीं, जिन्हें देखकर समुद्र तक भयभीत हो गया। इसके बाद उन्होंने समुद्र पर पुल वांधा तथा लंका में जाकर दुष्ट राक्षसों के जंगल को दावाग्नि के समान दग्ध कर दिया। वे कोसलनरेश श्रीराघवेन्द्र हमारी रक्षा करें।

इस श्लोक का व्याख्यान करतेहुए श्रीधरस्वामी कहते हैं- करोड़ों श्लोकों द्वारा वर्णित अद्भुत श्रीरामयश का वर्णन भागवत के दो अध्यायों में किया गया है किन्तु पूर्व में एक श्लोक में ही समस्त चरित का संक्षेप में संकेत कर दिया है। श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजी लिखते हैं-शेष गणेश के लिए भी समग्र श्रीरामचरित का वर्णन एवं लेखन असम्भव है। उसी श्रीरामलीला का सर्वप्रथम एक श्लोक में पश्चात् दो अध्यायों में वर्णन किया गया

है। नवम स्कन्धमें दो अध्यायों में श्रीरामचरित का वर्णन किया गया है। पञ्चम स्कन्ध में श्रीहनुमान्‌जी के द्वारा श्रीसीतारामोपासना का रसास्वादन आप सब कर ही रहे हैं। अन्य स्कन्धों में भी श्रीरामकथा का बीज यत्र-तत्र सुस्पष्ट परिलक्षित होता है। श्रीरघुनाथजी के शतकोटि विस्तृत चरित सुप्रसिद्ध ही हैं। वास्तवमें शतकोटि से भी अधिक विस्तृत श्रीरामचरित इसलिए कहा गया क्योंकि उसकी गणना संभव नहीं हैं। श्रीरामकथा के एक-एक अक्षर के उच्चारण से मनुष्यों के महापातक नष्ट हो जाते हैं। श्रीमन्मारुतनन्दन ऐसे उत्तमश्लोक भगवान् श्रीराघवेन्द्र को नमस्कार करते हैं-'नमो भगवते उत्तमश्लोकाय'।

नम आर्यलक्षण शीलव्रताय—श्रीराघवेन्द्र में सभी आर्य लक्षण विद्यमान हैं, वे शीलसिन्धु एवं दृढ़व्रती भी हैं- ऐसा श्रीधरस्वामी का मत है।

श्रीतीर्थ कहते हैं—भगवान् का नित्य- निर्दोष होना शील है। और जगत् का कारण होना व्रत है। श्रीविश्वनाथ-चक्रवर्ती कहते हैं- श्रीराघवेन्द्र सभी के शिरोधार्य- आर्यलक्षणों से युक्त हैं। प्रभु के श्रीचरणतल में ध्वज, वज्र, कमल, अंकुश आदि दिव्य चिह्न है। आजानुबाहु आदि दिव्य असाधारण शील से युक्त हैं। धर्मनिष्ठत्व एवं धीरोदात्तत्व आदि गुण उनके व्रत हैं। श्रीकिशोरीजी ने श्रीहनुमान्‌जी से कहा है- पापी हो या पुण्यात्मा हो, अथवा वध के योग्य हो क्यों न हो, आर्यपुरुष को तो उनपर अकारण करुणा ही करनी चाहिए। क्योंकि ऐसा एक

भी जीव नहीं है जिससे कोई न कोई अपराध न बना हो। श्रीजनकनन्दिनी के इस अभयप्रद वचन से अकारण करुणा ही आर्यों का व्रत रामायण में सर्वविदित है। प्रभु ने भी कहा है- केवल एक बार ही मेरी शरण में आकर जो कहता है मैं आपका हूँ उसे मैं सभी प्राणियों से अभय प्रदान करता हूँ यह मेरा व्रत है। इस प्रकार शरणागतों को अभय प्रदान करना ही श्रीराघवेन्द्र का व्रत है। इन्हीं व्रतों से प्रभु सदा युक्त रहते हैं। छोटे से छोटे पुरुष के साथ महत्पुरुषों के निष्कपट मिलन को सौशील्य कहा जाता है। श्रीनिषाद, शबरी, वानर, भालुओं के साथ प्रभु का निष्कपट मिलन उनके शील गुण का द्योतक है।

नम उपशिक्षितात्मने—श्रीधरस्वामी कहते हैं श्रीराघवेन्द्र का चित्त अत्यन्त संयत है। श्रीविश्वनाथचक्रवर्ती कहते हैं- गुरु ब्राह्मण आदि की शिक्षा ग्रहण करने में प्रभु सदा समर्थ रहते हैं। सिद्धान्तप्रदीपकार कहते हैं--श्रीराघवेन्द्र उपशिक्षित सन्तों की आत्मा-उपास्य हैं। महर्षि वाल्मीकि ने भी कहा है- जिस प्रकार नदियों से समुद्र घिरा रहता है उसी प्रकार श्रीराघवेन्द्र सदा सर्वदा सन्तों से आराधित हैं। अस्त्राभ्यास काल में भी शीलवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध सज्जनों के साथ सत्सङ्ग करते रहते हैं-उनके सन्देहों का निवारण करते रहते हैं।

उपासित लोकाय—श्रीधरस्वामी कहते हैं- श्रीराघवेन्द्र ने लोक का अनुसरण किया है। विश्वनाथचक्रवर्ती कहते हैं- प्रभु ने ब्रह्मा आदि देवों के उपास्य होते हुए भी अपने आचरण से धोबी पर्यन्त छोटे से छोटे लोगों के हृदय को आकृष्ट कर

लिया। इस विचार से समस्त लोक के वे उपास्य हो गये। श्री-रामायण में भी कहा गया है कि श्रीराघवेन्द्र राज्य की उपासना कर साकेत धाम प्रस्थान करेंगे। श्रीतीर्थ कहते हैं-- समस्त जीव प्रभु के आश्रित हैं। उन्होंने लोकमात्र, प्राणीमात्र पर अनु-ग्रह के लिए ही अवतार धारण किया है।

नमः साधुवादनिकषणाय—श्रीधरस्वामी कहते हैं- श्री-राघवेन्द्र साधुता की परीक्षा के लिए कसौटी के समान परम सीमा हैं। श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजी कहते हैं- ब्रह्मण्यत्व, सत्य-सन्धत्व, परमकृपालुत्व आदि साधुता के लक्षण हैं। श्रीराघवेन्द्र के द्वारा ही उनका उत्कर्ष है। साधुता से लोग उत्कृष्ट होते हैं किन्तु श्रीराघवेन्द्र को प्राप्तकर साधुता उत्कर्ष को प्राप्त होती है। जिस प्रकार कसौटीपर परीक्षण के पश्चात् ही परम उत्कृष्ट सुवर्ण का भी उत्कर्ष होता है, उसी प्रकार परम उत्कृष्ट साधुता का भी उत्कर्ष प्रभु के आश्रय से ही होता है।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय— श्रीराघवेन्द्र ब्राह्मण भक्त हैं। रामायण में प्रभु ने कहा है-मैथिलि ! मैं अपने जीवन का परि-त्याग कर सकता हूँ। श्रीलक्ष्मणकुमार के साथ आपका परि-त्याग कर सकता हूँ किन्तु ब्राह्मणों के समक्ष की गई राक्षस वध की प्रतिज्ञा का परित्याग नहींकर सकता हूँ। इस प्रकार ब्राह्मणों एवं ऋषियों आदि की रक्षा करने का एकमात्र व्रत ही यहाँ ब्रह्मण्यत्व है। ऐसे देव-अपने तेज से नित्यप्रकाशमान श्रीराघवेन्द्र को प्राकृत दोष स्पर्श नहीं कर सकता। अथवा ब्रह्म का अर्थ यहाँ वेद भी है। वेद उन्हीं का सम्यक् प्रतिपादन करता है ऐसा श्रीवीरराघवाचार्यजो का मत है।

महापुरुषाय महाराजाय नमः—पुरुष सूक्त में जगत्कारणत्व के उपयोगी समस्त कल्याणगुणगणों से विशिष्ट परम पुरुष श्रीराघवेन्द्र हैं अतः उन्हें यहाँ महापुरुष कहा गया। पुरुष से परे कोई नहीं है—वही सबकी सीमा हैं तथा सबका आश्रय हैं। इस श्रुति में जो पुरुष शब्द का संकेत है उसके वाच्य श्रीराम ही हैं। वेदावतार में महर्षि ने कहा है— श्रीराम शार्ङ्गधनुर्धारी, हृषीकेश, पुरुष तथा पुरुषोत्तम हैं।

भगवान् सभी के राजाधिराज हैं। व्यापक ब्रह्म महान् हैं उन्हीं को ईश्वर जानना चाहिए। वे ही पिता तथा प्रजापति हैं। महर्षि वाल्मीकि ने भी कहा है—राजाधिराज श्रीरामजी ने लङ्का में विभीषण का अभिषेक किया। इस श्लोक में राजराज शब्द महाराज पद का बोधक है। 'नमो भगवते उत्तमश्लोकाय' इस गद्य में अनेक बार नमः शब्द आये हैं। वे गुण, भेद के अभिप्राय से पृथक्-पृथक् हैं॥ ३॥

भगवन्! आप विशुद्ध बोधस्वरूप, अद्वितीय, अपने स्वरूप के प्रकाश से गुणों के कार्यरूप, जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओं का निरास करने वाले, सर्वान्तरात्मा, परम शान्त, शुद्ध बुद्धि से ग्रहण करने योग्य, प्राकृत नाम रूप से रहित तथा अहंकारशून्य हैं, मैं आपकी शरण में हूँ॥ ४॥

श्रीधरस्वामीजी कहते हैं—इस श्लोक से श्रीराघवेन्द्र को परम ऐश्वर्य बोधक वाक्यों से प्रणाम करते हैं। वेदान्त में जो एक तत्त्व सुप्रसिद्ध है मैं उसी को प्रणाम करता हूँ। इससे यह

निश्चय हुआ कि वेदान्त में प्रसिद्ध एक अद्वितीय तत्त्व श्रीराम ही हैं। भागवत के प्रथम स्कन्ध में 'वदन्ति तत्तत्त्वविदः' इस श्लोक की व्याख्या करते हुए श्रीधरस्वामी ने कहा है- कि जीव का परम कर्त्तव्य यदि जिज्ञासा ही है तो धर्म की जिज्ञासा ही करनी चाहिए क्योंकि धर्म ही एकमात्र तत्त्व है ऐसा कुछ लोग कहते हैं। इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए श्रीधरस्वामी कहते हैं- तत्त्ववेत्तागण तो अद्वय, अखण्ड जो ज्ञान है उसी को एकमात्र तत्त्व मानते हैं। यदि कोई जिज्ञासा करे कि तत्त्ववेत्तागण भी परस्पर में एक मत नहीं हैं इसका समाधान करते हुए कहते हैं–एक ही तत्त्व का अनेक नामों से संकेत तत्त्ववेत्ताओं ने किया है अतः वे एकमत हैं। उपनिषदों में उसी को ब्रह्म नाम से सम्बोधित किया गया है। योगियों ने परमात्मा तथा भक्तों ने उसी को भगवान् के नाम से सम्बोधित किया है। श्रीवीरराघवाचार्यजी कहते हैं—'वदन्ति' इस श्लोक में 'यज्ज्ञानम्' ज्ञानस्वरूप तथा ज्ञानगुणवाला भी है। अपने समान तथा अधिक से रहित, अन्य वस्तु रहित, अवयव भेद जाति भेद रहित पदार्थ को यहाँ 'अद्वय' कहा गया है। वही तत्त्व, ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् शब्द से यहाँ पठित है। श्रीविश्वनाथचक्रवर्ती कहते हैं–जो अद्वय ज्ञान है वही तत्त्व है। ज्ञानीजन जिस ज्ञान को ब्रह्मपद से संकेत करते हैं उनके मत में ज्ञान निराकार ज्ञातृ, ज्ञेय आदि विभाग से शून्य चित्स्वरूप है। भगवान् के धाम आदि भी चित्स्वरूप होने के कारण उस ज्ञान से अभिन्न ही हैं।

जीव माया भी ब्रह्म की शक्ति है अतः उससे अभिन्न ही है। सम्पूर्ण विश्व उसी ब्रह्म का कार्य है, अतः कारण रूप ब्रह्म के साथ कार्यरूप जगत् का अभेद भी सुतरां सिद्ध है। योगी जिसको परमात्मा कहते हैं वही ज्ञान है उनके मत में परमात्मा एकमात्र चित्स्वरूप एवं ज्ञानमात्र है। सब के साक्षी होने के कारण ज्ञानमात्र होते हुये भी ज्ञान का आश्रय भी है। सूर्य दीपक आदि पदार्थ ज्योति स्वरूप होने पर भी प्रकाश के आश्रय होते ही हैं। योगीजन अपने हृदय में अंगुष्ठमात्र पुरुष का ध्यान करते हैं अतः उनका ध्येय (उपास्य) परमात्मा ही है।

माया परमात्मा की शक्ति है तथा मायिक पदार्थ भी उससे पृथक् नहीं है। जीव भी उसी का एक अंश है अतः उससे भिन्न नहीं है। इस प्रकार इनके मत में भी परमात्मा से पृथक् द्वितीय पदार्थ के अभाव होने से अद्वय (अभेद) भलीभाँति सिद्ध हो जाता है।

भक्त जिसको भगवान् कहते हैं वही अखण्ड ज्ञान है। इनके मत में पूर्व की भाँति भगवान् ज्ञान स्वरूप होते हुये भी अप्राकृत चिन्मय छह ऐश्वर्यसे युक्त होने के कारण वे भी भगवत्-स्वरूप ही हैं। विष्णु पुराण में कहा गया है—समस्त ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान-वैराग्य ये छह भगवान् के भग—ऐश्वर्य हैं। ज्ञान-शक्ति—वल—ऐश्वर्य—वीर्य—तेज सम्पूर्ण रूप से जहाँ एकरस विद्यमान हो तथा जिनमें माया के दूषित गुण एक भी नहीं हो, वही 'भगवान्' कहलाते हैं।

इसी प्रकार भगवान् के द्विभुज चतुर्भुज आदि विविध-रूप भी भीतर-बाहर से चिन्मय हैं। स्कन्द पुराण में कहा गया है कि भगवान् के भक्त का नाश महाप्रलय में भी नहीं होता है अतः भगवान् से उनके सेवक स्वरूपतः पृथक् होने पर भी सेव्य-सेवक सम्बन्ध से उनसे पृथक् नहीं हैं। भगवान् के धाम वैकुण्ठ साकेत आदि एवं उनके लीलाविलास भी भगवान् की ही चिन्मय शक्ति है अतः उनसे अभिन्न ही है। भगवान् से भिन्न पदार्थ का ही अद्वय पद निषेध करता है। श्रीजड़भरतजी ने भी पंचम स्कन्ध में ज्ञान का स्वरूप इसी प्रकार कहा है—'विशुद्ध परमार्थरूप अद्वितीय तथा भीतर-बाहर के भेद से रहित परिपूर्ण ज्ञान ही सत्य वस्तु है। वह सभी के अन्तर्यामी तथा सर्वथा निर्विकार है। उसी का नाम भगवान् है तथा उसी को पण्डितजन 'वासुदेव' कहते हैं।' इस श्लोक में भी अद्वय-अखण्ड ज्ञान को भगवान् कहा गया है। 'वदन्ति तत्तत्वविदः' यह प्रथम स्कन्ध के श्लोक तथा 'ज्ञानं विशुद्धम्' यह पंचम स्कन्ध के श्लोक में ज्ञान के स्व-रूप का सुस्पष्ट विवेचन किया गया है तथा दोनों श्लोकों में अखण्ड ज्ञान के साथ 'भगवान्' शब्द प्रयुक्त है अतः भागवत का ज्ञान अशेष-विशेष-शून्य, निर्धर्मक नहीं है, किन्तु सगुण साकार, ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, तेज, पराक्रम, स्थैर्य, धैर्य, चातुर्य सत्यकाम, सत्य संकल्प, सौन्दर्य, माधुर्य, लावण्य आदि अनन्त-कल्याणगुणगण सम्पन्न भगवान् ही हैं।

प्रस्तुत श्लोक के द्वारा वेदान्तवेद्य एक अद्वय तत्त्व श्री-राम ही हैं-ऐसा श्रीहनुमान्जी ने स्वीकार किया है। श्रीवीर-

राघव कहते हैं– प्रकृति तथा पुरुष से विलक्षण भगवान् के स्वरूप का निरूपण कर, उसको श्रीराम रूप में अवस्थित जानकर इस श्लोक से श्रीहनुमान्‌जी नमस्कार कर रहे हैं। राग आदि से रहित होने के कारण भगवान् को विशुद्ध कहा गया है। वे एकमात्र अनुभव से ही जानने योग्य तथा ज्ञानस्वरूप हैं। मात्र शब्द से एकरस चिन्मय स्वरूप विवक्षित है। विशुद्धानुभवैकमात्र से स्वरूप का निर्देश किया गया है। भगवान् के ज्ञान का कभी भी संकोच नहीं होता। अपने प्रकाश से नित्य असंकुचित आनन्द स्वरूप विषयक धर्मभूत ज्ञान के द्वारा भगवान् ने तीनों गुणों एवं उनके द्वारा उत्पन्न तीनों अवस्थाओं को नष्ट कर दिया है। इस विशेषण से मायिक जीव का ग्रहण नहीं होता। क्योंकि वे गुणातीत नहीं हैं। भूख, प्यास, शोक, मोह, जरा, मृत्यु इन छह ऊर्मियों से रहित आनन्द स्वरूप भगवान् हैं अतः उन्हें प्रशान्त कहागया। अथवा विशुद्ध शब्द से केवल इन्द्रियों के द्वारा उनके अनुभव का निषेध किया गया है। इससे मुक्त चेतन का पार्थक्य कहा गया, क्योंकि वह बद्धावस्था में रागादि से कलुषित रहता है। स्वयंप्रकाश होने के कारण श्रीरामजी प्रत्यक् हैं। इससे पराक्–अचेतन द्रव्य की व्यावृत्ति कही गयी क्योंकि अचेतन स्वय प्रकाशित न होकर दूसरे से प्रकाशित होता है। सम्यक् ज्ञान द्वारा ही भगवान् की प्राप्ति होती हैं। श्रुति भी कहती है–-सूक्ष्मदर्शी महात्मा सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा भगवान् का दर्शन करते हैं। भक्तियोग से परिशोधित बुद्धि के द्वारा उनकी प्राप्ति होती है। इससे

जगत्कारणत्व का भी बोध होता है क्योंकि श्रुति में जब जिज्ञासा हुई कि ध्यान किसका करना चाहिये ? तो उत्तर मिला–कारण का ध्यान करना चाहिये, इस प्रकार कारण और ध्येय दोनों एकनिष्ठ ही होने चाहिये। यदि कारण भगवान् हैं तब देव-मनुष्यादि नामरूपों का आश्रय भी उन्हीं को बनना पड़ेगा। क्योंकि कारण का अर्थ ही होता है भावी अवस्था विशेष का पूर्व अवस्था के साथ योग होना। ऐसी दशा में सत्य, ज्ञान, अनन्त ब्रह्म हैं तथा निष्क्रिय निष्कल शान्त दोष एवं माया रहित भी वह है, इत्यादि श्रुतियों के द्वारा जो ब्रह्म को विकार रहित वर्णन किया गया है उसका विरोध होगा। 'अनाम रूपम्' द्वारा उसी का समाधान करते हैं।

प्रकृति तथा पुरुष विशिष्ट ही भगवान् जगत् के कारण हैं। प्रकृति पुरुष उनके विशेषण हैं। अतः अपने विशेषण रूप प्रकृति पुरुष में नामरूप का विस्तार किया। स्वयं प्राकृत नाम रूप रहित हैं। इस प्रकार वेदान्त में प्रसिद्ध परब्रह्म स्वरूप नर-हरि पुरुषोत्तम की शरण ग्रहण करते हैं। गीता में 'द्वाविमौ पुरुषौ लोके' इस श्लोक से 'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः' यहाँ तक नित्य मुक्त बद्ध–इन तीन प्रकार के जीवों से पृथक् भगवत्स्वरूप का विवेचन किया गया है। वहाँ कूटस्थ शब्द से मुक्त तथा नित्यसिद्ध जीव का संकेत है। क्योंकि दोनों प्राकृत विकार से रहित होने के कारण अक्षर तथा कूटस्थ शब्द से कहे गये हैं। यद्यपि प्रस्तुत श्लोक में प्रशान्त शब्द से मुक्त जीव की व्यावृत्ति

हो जाती है किन्तु नित्यसिद्ध की व्यावृत्ति के लिये नृहरि (पुरुषोत्तम) कहा गया। 'निरहम्' इस पाठ में नामरूप के अभाव में अहंकार रहित होना ही हेतु है। यहाँ 'अहम्' का अर्थ अहंकार है। प्रकृति के परिणाम विशेष जीव को ही यहाँ अहंकार शब्द से कहा गया है। आत्मा भी अहमर्थ का बोधक है। इस प्रकार प्रकृति पुरुषगत विकारों से परे प्राकृत नामरूप रहित भगवान् श्रीराघवेन्द्र की शरण ग्रहण करते हैं—उपाय, उपेय दोनों प्रभु ही हैं ऐसा दृढ़ निश्चय करते हैं। श्रीवीरराघव का यह मत है।

श्रीजीवगोस्वामी कहते हैं—दूर्वादल श्यामल श्रीरामचन्द्रजी का लोक वेद प्रसिद्ध स्वरूप का प्रस्तुत श्लोक में वर्णन है। जिस प्रकार सूर्य आदि प्रकाशक वस्तु में शुक्ल आदि गुण भी उससे पृथक् नहीं होते हैं उसी प्रकार भगवान् श्रीराघवेन्द्र के सर्वप्रकाशक स्वरूप से उनके गुण भी पृथक् नहीं है। मात्र शब्द का यही तात्पर्य है। भगवान् ने अपनी स्वरूप शक्ति के द्वारा त्रिगुणात्मिका माया शक्ति को दूर कर रखा है। अतः प्रशान्त हैं सभी उपद्रवों से रहित हैं। अनुभव मात्र में प्रत्यक् हेतु देते हैं। वे दृश्य से पृथक् हैं। श्रुति कहती है 'आँख से उनके रूप का दर्शन सम्भव नहीं है' 'जिसको भगवान् वरण करते हैं उसी को अपने स्वरूप का दर्शन प्रदान करते हैं।' भगवान् सृष्टि के समय जीवात्मा के साथ ही चराचर में प्रवेश करते हैं अतः वे प्रसिद्ध प्राकृत नाम रूप रहित हैं। श्रुति में आत्मा शब्द को परमात्मा की जीव शक्ति रूप अंश कहा गया है। 'अनेन जीवेन' इस श्रुति

में इदं शब्द के पृथक् निर्देश के कारण आत्मरूप से प्रवेश का अर्थ है- देवता शब्द वाच्य तेज, जल, मृत्तिका आदि उपाधि में जीव का अहंकार के अध्यास के कारण ही अभिनिवेश है। भगवान् अन्तर्यामी रूप से स्वयं वहाँ विद्यमान रहते हुये भी अध्यासा- भाव के कारण नामरूप उपाधि से रहित होते हैं। सर्वथा अहंकार रहित होने पर नामरूप का विस्तार करूँ यह प्रयोग सार्थक नहीं होगा। उपाधिकृत नामरूप रहित होनेपर भी सद्रूप अहमर्थ से परमात्मा युक्त है। यदि कोई जिज्ञासा करे कि श्रीराघवेन्द्र का पूर्वोक्त अलौकिक स्वरूप सभी को ज्ञात नहीं है? उसका समा- धान करते हुये कहते हैं- शुद्ध चित्त के द्वारा ही उनकी प्राप्ति होती है। ब्रह्मस्तुति में भी यह बात कही गयी है। श्रीविश्वनाथ- चक्रवर्ती कहते हैं- श्रीहनुमान्जी बिचार करते हैं कि शंख, चक्र आदि आयुध, गरुड़ वाहन आदि ऐश्वर्यको उन्होंने प्रकट नहीं किया है अतः इस श्रीरामावतार के ब्रह्मस्वरूप होने में कुछ लोग संदेह करते हैं। जो सन्देह करते हैं वे लोग सन्देह किया करें, हम तो इन्हें साक्षात् ब्रह्मरूप में ही अनुभव कर रहे हैं। 'यत्' इस श्लोक से इसी अनुभव का श्रीहनुमान्जी प्रकाशन कर रहे हैं- माया- सम्बन्धरहित जो केवल अनुभव मात्र एक परमतत्त्व है उसी की शरण ग्रहण कर रहे हैं। यदि कोई जिज्ञासा करे कि शुद्ध जीव का स्वरूप भी इसी प्रकार है? उत्तर देते हैं- अपने स्वरूप शक्ति के द्वारा जिन्होंने माया शक्ति को दूर भगा दिया है अतः प्रत्यक् हैं- दृश्य से पृथक् हैं। जीव माया का स्वामी नहीं हो सकता

अतः जीव सच्चिदानन्द के अंश होते हुये भी भगवान् से पृथक् है। कोई आँखों से उनका रूप नहीं देख सकता है। जिस पर वे कृपा करें वही उनको प्राप्त कर सकता है इत्यादि श्रुतियों में भगवान् की प्राप्ति उनकी कृपा से ही कही गयी है। इस प्रकार की प्रपत्ति भी भगवान् स्वयं कृपा कर जीव को कराते हैं, अतः अहंकार रहित होकर हम उनकी शरण ग्रहण करते हैं। शेष व्याख्या श्रीजीवगोस्वामी की व्याख्या के अनुरूप ही है।

सिद्धान्तप्रदीपकार कहते हैं– अनन्त कल्याणगुणगणसागर वेदान्तवेद्य परब्रह्म श्रीराम ही मुमुक्षुओं के एकमात्र ध्येय हैं इसी विषय का 'यत्' इस श्लोक से विवेचन किया गया है ॥ ४ ॥

श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं प्रभो! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसों के बध के लिये ही नहीं हैं, इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्यों को शिक्षा देना है। अन्यथा, अपने स्वरूप में ही रमण करने वाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वर को श्रीसीताजी के वियोग में इतना दुःख कैसे हो सकता था ॥ ५ ॥

व्याख्या––श्रीधरस्वामी कहते हैं–जगदीश्वर आत्माराम श्रीराम का श्रीदशरथनन्दन के रूप में अवतार क्यों हुआ? इस जिज्ञासा का समाधान करते हुये कहते हैं--विभु श्रीराम का मनुष्य रूप में अवतार रावण के वध के लिये हुआ,क्योंकि रावण मनुष्य को छोड़कर अन्य किसी से अवध्य था। साथ ही संसार में स्त्री-संग से दुःख अनिवार्य हो जाता है ऐसी शिक्षा के लिये भी था। अन्यथा अपने स्वरूप में रमण करने वाले जगदात्मा को श्रीसीता-

जी के वियोग में दुःख कैसे होता। श्रीवीरराघव कहते हैं-पूर्व के श्लोक में परब्रह्म का नामरूपरहित होना कहा गयाहै वह उचित था किन्तु श्रीराघवेन्द्र का नामरूपरहित होना कैसे सम्भव है? क्योंकि मनुष्य रूप में उनके नामरूप स्पष्ट हैं। इस जिज्ञासा का समाधान करते हुये कहते हैं-परब्रह्म ही श्रीरामरूप से इस लोक में अवतीर्ण हुये। अपने दिव्यधाम स्थित स्वभाव का परित्याग किये विना अवतीर्ण होना अवतार का लक्षण कहा गया है। प्रभु ने अपने परब्रह्मस्वरूप से ही इस लोकमें मनुष्य के सजातीय रूप में अवतार ग्रहण किया।

संसार दोषयुक्त है-इस विषय का ज्ञान मनुष्यों को प्रदान करने के लिये तथा साधुपरित्राण के लिये ही प्रभु का अवतार हुआ। यदि कोई जिज्ञासा करे कि प्रभु का अवतार केवल राक्षस वध केलिये ही हुआहै मनुष्यों को शिक्षा देने केलिये नहीं। इसका समाधान करते हुये कहते हैं- वास्तव में प्रभु का अवतार केवल राक्षसों के वध के लिये नहीं हुआ किन्तु साधुपरित्राण ही अवतार का मुख्य प्रयोजन है। गीता में भगवान् ने कहा है- साधुओं के परित्राण, राक्षसों के विनाश एवं धर्म की स्थापना के लिये ही मेरा अवतार हुआ है। 'बिनाशाय च' इस पद में 'च' अन्वाचय के अर्थ में प्रयुक्त हैं। छात्र भिक्षा के लिये जा रहा था तब गुरुदेव ने कहा कि साथ में गाय भी लेते आना। इस वाक्य में जिस प्रकार भिक्षा लाना मुख्य प्रयोजन है तथा गाय का लाना गौण प्रयोजन है। उसी प्रकार गीता के श्लोक में साधु परित्राण

मुख्य प्रयोजन है, दुष्टों का विनाश गौण है। चार वर्णों चार आश्रमों की शास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार पंच महायज्ञों के द्वारा ईश्वर का आराधन ही धर्म है। इसी धर्म की शिक्षा तथा संसार के दोषों को बतलाकर लोगों को शिक्षित करना ही अवतार का प्रयोजन है। दुष्टों का बिनाश तो भगवान् संकल्प से भी कर सकते थे। भगवान् के साथ शयन, आसन, भ्रमण, भोजन आदि में सदा साथ रहने वाले सन्त को भगवान् के विना एक-एक क्षण कल्प के समान प्रतीत होता है, अपने दर्शन, स्पर्श, संभाषण के द्वारा भगवान् उन्हीं साधुओं को सुख प्रदान करने के लिये अवतीर्ण होते हैं। यदि अवतार का प्रयोजन मर्त्यशिक्षण नहीं होता तो गीता के अनुसार सभी के हृदय में विराजमान सर्वनियन्ता ईश्वर के लिये श्रीसीताजी का हरण करने वाले रावण के भी अन्तरात्मा होने के कारण उसके द्वारा अपनी स्त्री का अपहरण कराने का क्या प्रयोजन था? साथ ही अपने अतिशय असीम आनन्दस्वरूप में रमण करने वाले, उसी स्वरूपानन्द से सदा सन्तुष्ट रहने वाले, विषयासक्ति से रहित श्रीराघवेन्द्र को श्रीसीताजी के वियोग में दुःखी होना कैसे सम्भव होता। वास्तव में श्रीमैथिली के वियोग में दुःख का अनुसरण कर प्रभु ने संसारियों को यही शिक्षा दी है कि संसार दुःख का स्थान है, अन्यथा आत्माराम सर्वनियामक प्रभु को दुःखी होने का क्या प्रयोजन हो सकता था। श्रीतीर्थ कहते हैं कि मर्त्यशिक्षण का अर्थ है-गुरु की आज्ञा का पालन, शरणागत का पालन, उनके मनोरथों की पूर्ति

आदि कार्य महापुरुषों को करने चाहिए। प्रभु ने भी श्रीदशरथ-जी की आज्ञा का पालन, वन गमन, श्रीसीतान्वेषण, शरणागत, सुग्रीव के मनोरथ की पूर्ति, विभीषण को राज्य प्रदान कर यही शिक्षा प्रदान की है। वेद कहता है- भगवान् अपने स्वरूप में ही प्रतिष्ठित रहते हैं। ऐसे स्वरूप में रमण करने वाले प्रभु के लिए मर्त्यशिक्षण के अतिरिक्त अवतार का क्या प्रयोजन हो सकताहै?

श्रीजीवगोस्वामीजी कहते हैं--भगवान् के अवतार के मुख्य प्रयोजन भक्तों में लीलामाधुर्य का प्रकाशन है। दुष्ट विनाश धर्म संस्थापन आदि गौण प्रयोजन हैं। मनुष्यों को शिक्षा दो प्रकार से दी गई है। वहिर्मुख जोवों को तो यही शिक्षा दी गई है कि विषयों के संग से दुःख की प्राप्ति अनिवार्य है। किन्तु यह गौण प्रयोजन है। मुख्य प्रयोजन तो अपने भक्तों के चित्त को सरस बनाने केलिये अपने संयोग वियोग लीला माधुर्य का प्रकाशन है। यदि यह प्रयोजन नहीं होता तो अपने स्वरूप वैकुण्ठ में रमण करने वाले श्रीरामजी को श्रीसीताजी के वियोग में दुःखी होना कैसे सम्भव होता। रावण का वध संकल्प से ही कर देते फिर दुःखी होने की क्या आवश्यकता थी। अपने लीलामाधुर्य-प्रकाशन केलिये तो दुःखी होना उचित ही था। कृपा तथा लीला-माधुर्य-दोनों का उत्कर्ष यहाँ प्रशंसनीय है। श्रीसीताजी के वियोग में दुःखी होना लीलामाधुर्य के अभ्यन्तर ही है अतः कोई दोष नहीं है। श्रीविश्वनाथचक्रवर्ती कहते हैं- प्रपंच लोक में प्रभु का अवतार केवल राक्षसों के वध के लिये ही नहीं, किन्तु मनुष्यों को

शिक्षा देने केलिए भी हुआ। मनुष्य दो प्रकारके हैं-एक धर्मात्मा दूसरे प्रेमी। धार्मिकों को धर्म की शिक्षा तथा प्रेमियों को प्रेम की शिक्षा दी है। अन्यथा अपने ही स्वरूप में रमण करने वाले प्रभु का श्रीसीताजी के बियोग में दुःखी होना कैसे सम्भव हो सकता है ? किन्तु सती साध्वी भार्या की धार्मिकजनों को उपेक्षा नहीं करनी चाहिये तथा उसके लिए प्राप्त होने वाले कष्टों को भी सहना ही चाहिये। इस विषय की शिक्षा देने के लिये अपने में न होने वाले कष्टों का भी प्रदर्शन किया यह प्रथम पक्ष है। दूसरा पक्ष है कि श्रीसीताजो के वियोग में कष्ट नहीं हुआ किन्तु प्रेम के स्थायीभाव का वियोग रस के रसास्वादन द्वारा दुःख रूप में भासमान परम सुख का ही अनुभव किया, क्योंकि आत्माराम तथा दुःखी होना—दोनों एक साथ नहीं रह सकता है। जो दुःखो है वह आत्माराम नहीं हो सकता जो आत्माराम है वह दुःखी नहीं हो सकता है।

यदि कोई जिज्ञासा करे कि श्रीराम जब श्रीसीताजी के साथ रमण करते हैं तव वे आत्माराम कैसे हो सकते हैं ? इसका उत्तर देते हुये कहते हैं कि श्रीसीताजी श्रीराघवेन्द्र की स्वरूप-शक्ति होने के कारण आत्मा ही हैं अतः उनमें रमण करना आत्मा में ही रमण करना है यदि कोई जिज्ञासा करे कि जब श्रोसीताजो उनकी स्वरूप शक्ति हैं तब उनका वियोग कैसे हुआ? इसका उत्तर देते हुये कहते हैं—

एक ही परम तत्त्व चित् शक्ति की वृत्ति के भेद प्रेमाख्य महासार से अनादिकाल से ही दो रूपों में विभक्त है। प्रथम षडैश्वर्य

ह्लादमय दूसरा केवल ह्लादमय। प्रथमतत्त्व भगवत्तत्व है दूसरा भक्तितत्त्व है। पुनः उसी प्रेम के द्वारा दूसरा आह्लादमय भक्तितत्त्व अपनी चार वृत्तियों से दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर इन चार भावों में विभक्त होकर उसी प्रथम भगवत्तत्व को दास्यादि भाव से व्यवस्थापित करता है,तथा भक्ति की साधना करने वाले प्राकृत जीवों में भी भक्ति का परिपाक होने पर स्वयं प्रकट होकर दास्यादि चार भावों को सन्निविष्ट कर यथासमय चार भावों का विषय बनता है। पुनः उसी प्रेम के द्वारा स्थायी भाव को प्राप्तकर अपनी ही शक्ति के द्वारा विभावादि अनुभावों को प्रकट कर स्वयं रसरूप बनकर वही युगलतत्त्व स्वयं परस्पर विषय आश्रय बनकर भक्तों को आनन्द प्रदान करता है। साथ ही योग-वियोग के द्वारा सुख-दुःखों का अनुभव कर अपने असाधारण माधुर्य का भक्तों को आस्वादन कराकर रसिकों में एक अलौकिक आनन्दमय चमत्कार उत्पन्न करता है। श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि अवतारों को भी इतने दुःख प्राप्त होते हैं ऐसा अनुभव करते हुए कुछ लोगों का कथन है कि जीवों की शिक्षा के लिए भगवान् ने ऐसा अनुसरण किया है- यह उन लोगों का व्यामोह ही है।

यहाँ पर विचारणीय विषय यह है कि 'मर्त्यावतार' इस श्लोक से अवतार का प्रयोजन कहा गया। स्त्री संग से दुख उठाना पड़ता है मनुष्यों को यह शिक्षा देना ही अवतार का

मुख्य प्रयोजन है, राक्षस वध नहीं– ऐसा श्रीधरस्वामी का मत है। श्रीवीरराघव ने भी श्रीधरस्वामी का ही समर्थन किया है।

नवमस्कन्ध में भी कहा गया है कि 'स्त्रीसंगियों की दशा का चित्रण करते हुये प्रभु वन में विचरते रहे'– 'प्रथयंश्चचार'। पुनः वहीं श्रीशुकदेवजी राजा से कहते हैं–परीक्षित् ! जब जगज्जननी श्रीजानकीजी पृथिवी में प्रविष्ट हो गईं तब भगवान् श्रीराघवेन्द्र ने अपने शोकावेश को बुद्धि के द्वारा रोकना चाहा, परन्तु परम समर्थ होने पर भी वे उसे रोक नहीं सके, क्योंकि उन्हें श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजी के पवित्र गुण बार–बार स्मरण हो आया करते थे। परीक्षित् ! यह स्त्री तथा पुरुष का सम्बन्ध सर्वत्र इसी प्रकार दुःख का कारण बन जाता है। यह बात बड़े बड़े समर्थ पुरुषों के विषय में भी इसी प्रकार है। ऐसी दशा में गृहासक्त विषयी पुरुषों के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है।

नवमस्कन्ध के पूर्वोक्त विवेचन से भी यह स्पष्ट है कि मर्त्यावतार का मुख्य प्रयोजन मर्त्यशिक्षण है। अब मर्त्यशिक्षण में मुख्यरूप से लोगों को यह शिक्षा देना है कि स्त्रियों में आसक्ति दुःख का कारण है। किन्तु केवल इतना ही मर्त्यशिक्षण का तात्पर्य नहीं हो सकता अतः श्रीजीवगोस्वामी श्रीविश्वनाथचक्रवर्ती के व्याख्यानों में जिन गोपनीय रहस्यों का उद्घाटन हुआ है उसका मनन नितान्त आवश्यक है। स्त्री में आसक्ति दुःखदायक है। यह शिक्षा तो गृहासक्त –अज्ञानियों को ही दी गयी है।

श्लोक में स्पष्ट है—'अपि-ईश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः।' ईश्वरों को भी जब स्त्री-पुरुष सम्बन्ध से त्रास उत्पन्न हो जाता है तब ग्राम्य (अज्ञानी) गृहचेता (गृहासक्त) का तो कहना ही क्या है। यहाँ गृहासक्त से स्पष्ट है कि यह शिक्षा गृहासक्त को ही दी गई है। इस अर्थ में भी श्रीचक्रवर्ती ने जो चमत्कार उत्पन्न कर दिया है वह मननीय है—वे कहते हैं कि 'सती साध्वी पतिव्रता भार्या के लिए दुःखी होना महापुरुषों का धर्म है। साथ ही अपनी भार्या को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए इत्यादि शिक्षा धार्मिकों को दी गयी। केवल स्त्री-आसक्ति में दोष दिखलाकर श्लोक शान्त नहीं होताहै वह तो ज्ञानियों एवं रसिक भक्तों को इस प्रसङ्ग में भगवल्लीलामाधुर्यरसास्वादन करने का संकेत करते हैं। धार्मिकों को धर्मशिक्षा तथा रसिक प्रेमियों को प्रेम की शिक्षा दी है। बालकाण्ड से अरण्यकाण्ड पूर्वार्ध तक एवं पुनः उत्तरकाण्ड की लीला में श्रीसीतारामजी की संयोगलीलामाधुर्य का प्रकाशन है तथा अरण्यकाण्ड उत्तरार्ध से रावण वध पर्यन्त श्रीरामायण में वियोगलीला का प्रकाशन हुआ है। किष्किन्धा तथा सुन्दरकाण्ड में श्रीसीतारामजी का परस्पर विश्लेषरस का रसास्वादन रसनीय है। इस प्रकार प्रेमीभक्तों के लिए संयोग वियोग लीलामाधुर्य का सम्यक् प्रकाशन ही मर्त्य-शिक्षण का मुख्य तात्पर्य है अतएव मैंने श्रीजीवगोस्वामी तथा श्रीचक्रवर्तीजी की वन्दना की है। वास्तव में ऐसे गोपनीय रहस्यों का उद्घाटन करने वाले ये आचार्यगण वन्दनीय हैं।

नवम स्कन्ध के श्लोकों की विशेष व्याख्या करते हुये श्री-जीवगोस्वामीजी आगे लिखते हैं कि 'तदनन्तर वे अपनी प्राण-प्रिया श्रीसीताजी से बिछुड़कर अपने भ्राता श्रीलक्ष्मणकुमार के साथ वन–वन में दीन की भाँति **भ्रमण** करने लगे।' इस प्रकार परम भक्तों पर जो प्रभु को कृपा है उसी का जब उद्दीपन हुआ तब स्त्रीसंगियों की चेष्टा, विलाप आदि का **चित्रण** करते हुये प्रभु यत्र–तत्र विचरण करते रहे। 'प्रियया वियुक्तः' इस वाक्य से भी इसी बात का संकेत मिलता है।

श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजी कहते हैं—'जब भगवान् श्रीराम जंगल में दूर निकल गये तब नीच राक्षस रावण ने भेड़िये के समान विदेहराजनन्दिनीसुकुमारीश्रीसीताजी का हरणकर लिया' 'प्रियया वियुक्तः' 'प्रिया से बिछुड़ गये।' वियोग शृङ्गार रस के आश्रयालम्बन प्रभु वियोगरस का आस्वादन करते हुये सात्विक सञ्चारी आदि अनुभाव तथा विलाप मूर्च्छा आदि प्रेमोन्माद का प्रकट करते हुए वन में भ्रमण करने लगे। बहिर्मुख स्त्रीसंगी जीवों को विलाप दुःख आदि का कष्ट दिखलाते हुए तथा अन्त-रंग भक्तों को तो केवल प्रथामात्र का–स्त्रीवियोग में इस प्रकार के विलाप अज्ञानीजन करते हैं इसी का संकेत करते हुए **भ्रमण** करने लगे। वास्तव में उनमें दुःख का लेश भी नहीं था इस बात को विज्ञजन जानते थे। श्रीरामतापनी उपनिषद् में कहा गया है कि 'चिन्मय महाविष्णु श्रीहरि श्रीदशरथजी के गृह में प्रकट हुए।' इस प्रमाण से चिदानन्दमय दिव्य, मन,बुद्धि,इन्द्रिय शरीर

वाले परब्रह्म को दुःख की सम्भावना शास्त्र एवं युक्ति से प्रति-
कूल है। श्रीचक्रवर्ती नवम स्कन्ध की व्याख्या करते हुए कह रहे
हैं कि इस विषय का विवेचन पंचम स्कन्धस्थ (प्रस्तुत) व्याख्यान
से सभी सज्जनों को ज्ञात ही है।

'स्त्री-पुरुषों का सम्बन्ध सर्वत्र त्रास का कारण होता है'
इस श्लोक का व्याख्यान करते हुए श्रीजीवगोस्वामीजी महाराज
कहते हैं- कर्म योगादि साधनों में पारंगत ईश्वरों-महापुरुषों को
अवश्य स्त्री-पुरुष सम्बन्ध त्रासदायक है किन्तु श्रीसीतारामजी
का तो यह सम्बन्ध समस्त पुरुषार्थों में श्रेष्ठ प्रेमसारमय ही
था। श्रीचक्रवर्ती कहते हैं- जो लोग कामासक्त हैं, वे स्त्रियों में
आसक्त रहकर, उनका स्मरण कर संसार-सागर में गोता लगाते
रहें, क्योंकि ब्रह्मा आदि ईश्वरों को भी स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध-
जनित त्रास, लोक-परलोक में संसार को देने वाला है, क्योंकि
देवताओं का यह प्रसङ्ग प्राकृत तथा काममूलक है, अतएव
'ईश्वराणाम्' इस वहुवचन का प्रयोग है 'ईश्वरस्य' एक वचन
नहीं है। ब्रह्मा आदि ईश्वरों केलिए स्त्री आसक्ति त्रासदायक है
भगवान् के लिए त्रासदायक नहीं है। इस प्रकार 'मर्त्यावतार'
इस श्लोक से अवतार के अनेक प्रयोजन कहे गये हैं। किन्तु मुख्य
प्रयोजन भक्तों को लीलामाधुर्यरस प्रदान करना है, धर्मरक्षण,
राक्षस विनाश आदि गौण प्रयोजन हैं-इस विषय का प्रतिपादन
पूर्व में ही किया जा चुका है।

अवतार प्रयोजन का कारण बतलाते हुए श्रीवीरराघव कहते हैं कि दिव्यधाम में भगवान् का जो असाधारण स्वसमाभ्यधिक शून्य स्वरूप गुण स्वभाव आदि हैं उसी के साथ लीलाविभूति में प्रभु अवतीर्ण होते हैं। अपने परधामस्थित गुणस्वभाव के साथ ही रूपान्तर धारण करना अवतार का लक्षण कहा गया है। पूर्वाचार्यों ने अवतारी की अपेक्षा अवतार का उत्कर्ष स्वीकार किया है। श्रुति कहती है 'भगवान् अवतार लेने पर विशेष उत्कर्ष को प्राप्त करते हैं।' तापनी श्रुति भी कहती है– श्रीदशरथजी के गृह में चिन्मय महाविष्णु श्रीहरि अवतीर्ण होकर, रघुकुल में विशेष रूप से प्रकाशित होते हैं। जितना श्रीदशरथजी के प्राङ्गण में भगवान् प्रसन्न रहते हैं, उतना साकेत में भी प्रसन्न नहीं रहते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने कहा है–अमित तेजस्वी पुत्र को पाकर श्रीकौसल्याजी के मंगलमय अंक में विराजमान होने पर श्रीराघवेन्द्र का परत्व असाधारण रूप से प्रकट हुआ। यद्यपि सौन्दर्य–माधुर्य–लावण्य–सौरस्य-सौगन्ध्य–सौकुमार्य आदि दिव्य गुणों का मुक्तात्मागण परधाम में भलीभाँति उपभोग करते हैं किन्तु दीनवत्सल अकारणकारुणिक पतितपावन आदि प्रभु के गुणों का परधाम में कोई उपयोग नहीं हो पाता, क्योंकि परधाम में कोई दीन हीन पतित नहीं है। श्रुति कहती है– 'मुक्त होनेपर जीव भगवान् के समान हो जाता है।' गीता में भी कहा गया है– इस ज्ञान को प्राप्त कर जीव 'अपहत पाप्मा विजर विमृत्यु सत्यकाम सत्यसंकल्प' आदि मेरे धर्मों को प्राप्त कर लेता है।

एकपाद विभूति में तो सौन्दर्य माधुर्य आदि के साथ दीनवत्सल, पतितपावन आदि गुणों का भी सम्यक् रसास्वादन भक्त करते हैं। भगवद् रहस्य को जानने वाले महापुरुषगण इस रहस्य को भली-भाँति जानते ही हैं। अवतार चरित के गान से ही भारतीय जनता कृतार्थ होती आई है। श्रीमद्भागवत में ही भारतवासियों की प्रशंसा करते हुये कहा गया है- 'अहो! सात समुद्र वाली पृथिवी के समस्त द्वीप तथा वर्षों में यह भारत वर्ष परम पुण्यभूमि है, क्योंकि यहाँ के निवासी लोग भगवान् के मंगलमय अवतार चरित्रों का गान करते हैं।' जब रावण ने ब्रह्माजी से यह वरदान माँगा कि भगवन्! जीव को मृत्यु से बढ़कर और किसी से भय नहीं होता है। मृत्यु से बढ़कर अन्य कोई शत्रु नहीं है अतः आप मुझको अमरत्व प्रदान करें। ब्रह्माजी ने कहा सर्वदा अमर रहने का वरदान मिलना असम्भव है अतः अन्य वर माँगो! रावण ने कहा- 'अमर पूजित' हमको मनुष्य आदि जीवों से भय नहीं है क्योंकि मैं तो उनको तृण के समान समझता हूँ। उसने मनुष्य से अवध्य होने का वरदान नहीं माँगा, ब्रह्माजी ने ऐसा ही वरदान दिया। अतएव भगवान् श्रीराघवेन्द्र ने मनुष्य के रूप में अवतीर्ण होकर उसका वध किया। इसीलिए भगवान् ने रावण वध के पूर्व अपने ऐश्वर्य को छिपाने का तथा माधुर्य के प्रकाशन का प्रयास किया।

वेदावतार श्रीमद्रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने कहा है- जगज्जननी श्रीजानकीजी की अग्नि परीक्षा के समय ब्रह्मा, शिव,

इन्द्र, वरुण आदि सभी देवता श्रीराघवेन्द्र के पास आये। उनमें लोकपितामह ब्रह्मा ने प्रभु से कहा—प्रभो ! समस्त लोकों के आप कर्ता तथा ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं। अग्नि में प्रवेश करती हुई श्रीसीताजी की उपेक्षा आप क्यों कर रहे हैं ? आप अपने वास्तविक स्वरूप को क्यों नहीं पहचान रहे हैं ? इस प्रकार भगवान् श्रीराम की विभूतियों का ब्रह्मा ने वर्णन किया। यद्यपि भगवान् की विभूतियों का अन्त नही है। अनन्त होने के कारण समग्र विभूतियों का कोई वर्णन नहींकर सकता है तथापि प्रधान विभूतियों का वर्णन करते हुये ब्रह्माजी कहते हैं—पूर्वकाल में वसुओं के प्रजापति ऋतधामा नामक वसु आप ही हैं। आप तीनों लोकों के आदिकर्ता स्वयं प्रभु हैं। रूद्रों में अष्टम रुद्र तथा साध्यों में पञ्चम साध्य आप ही हैं। यहाँ अष्टम रुद्र से कैलाशवासी भगवान् श्रीशिवजी विवक्षित हैं। वीर्यवान् नामक पञ्चम साध्य आप ही हैं। दो अश्विनीकुमार आप के कान हैं तथा सूर्य एवं चन्द्रमा आपके नेत्र हैं। सृष्टि के आदि अन्त तथा मध्य में आप ही दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार देवताओं के कहने पर समस्त लोकों के स्वामी श्रीराघवेन्द्र ने देवताओं से कहा—मैं अपने आपको मनुष्य दशरथनन्दन राम मानता हूँ। मैं जो हूँ तथा जिससे सम्बन्धित हूँ जहाँ से आया हूँ, वह सब आप ही मुझे बताइये। यद्यपि ब्रह्मा आदि देवताओं ने प्रभु की स्तुति की किन्तु सर्वदेव पूजनीय ब्रह्माजी से अपने स्वरूप, रूप, गुण, विभूति आदि का ज्ञान निज भक्तों को कराने के लिए तथा अपना सौशील्य प्रदर्शित

करते हुये कहा कि मैं अपने को मनुष्य दशरथनन्दन श्रीराम ही समझता हूँ। परत्व की अपेक्षा मनुष्य के रूप में अभिनय करना ही मुझे परम प्रिय है उसमें भी रामनाम प्रिय है। उसमें भी दशरथनन्दन रामनाम और भी प्रिय है। अवतार की अपेक्षा चक्रवर्तीनन्दन ही मुझे अत्यन्त प्रिय है।

श्रीराघवेन्द्र सभी देवताओं के स्वामी हैं किन्तु उनके इस परत्व को सभी लोग नहीं जानते हैं अतः सभी को प्रभु का परत्व ज्ञान हो एतदर्थ अपने 'स्वरूप के सम्बन्ध में ब्रह्माजी से पूछते हैं– 'जो मैं हूँ' वह आप बतलाइये'। जो मैं हूँ–यह स्वरूप के सम्बन्ध में प्रश्न है। जिससे सम्बन्धित हूँ-- यह सम्बन्ध विषयक प्रश्न है, तथा जहाँसे आया हूँ यह प्रयोजन के विषय में प्रश्न किया गया है। आप ही नारायण, देव, श्रीमान्, चक्रधारी तथा विभु हैं यहाँ से लेकर आपके प्रादुर्भाव तथा तिरोभाव एवं आप कौन हैं ?इस विषय को आज तक कोई नहीं जानता है। इस श्लोक पर्यन्त भगवद् स्वरूप सम्बन्धी प्रश्न का समाधान किया गया है। सभी प्राणियों में ब्राह्मणों में तथा गायों में आपका दर्शन होता है इस श्लोक से सम्बन्ध प्रश्न का उत्तर दिया गया है। आप सहस्र मस्तक वाले, सहस्र नेत्र, सहस्र चरण तथा श्रीमान् हैं इस श्लोक से लेकर श्रीसीताजी लक्ष्मी हैं आप विष्णु हैं देव, कृष्ण, प्रजापति हैं। रावण के वध के लिए मनुष्य शरीर धारण कर रखा है इस श्लोक पर्यन्त प्रयोजन प्रश्न का उत्तर ब्रह्माजी ने दिया है। इसके पश्चात् सर्ग पर्यन्त ब्रह्मस्तव की फलश्रुति कही गयी है। यहाँ

भगवान् ने ब्रह्माजी को अपना ऐश्वर्य प्रकट करने का आदेश दिया तथा यह भी कहा कि मुझे तो चक्रवर्तीनन्दन रूप ही अत्यन्त प्रिय है परत्व प्रिय नहीं है, किन्तु आप मेरे परत्व का वर्णन कर सकते हैं। समग्रलीला में भगवान् ने अपने ऐश्वर्य को छिपाये रखा। अब रावण वध हो जाने के बाद अवतार का कार्य सम्पन्न हो गया, अतः ऐश्वर्य वर्णन के लिये ब्रह्माजी को अनुमति दे दी। यदि रावण बध के पूर्व ऐश्वर्य प्रकट हो जाता तो ब्रह्मा-जी का वरदान सफल कैसे होता? ऐश्वर्य-गोपन में यह भी कारण था। यद्यपि भगवान् ने अपने ऐश्वर्य छिपाने का पूर्ण प्रयास किया फिर भी भक्तों को उनके ऐश्वर्य का ज्ञान हो ही गया। श्री-यामुनाचार्यजी ने कहा है—'प्रभो! देश, काल, वस्तु—इन सीमाओं से तथा अपने समान एवं अधिक से रहित आप अपने प्रभुत्व को यद्यपि माया के बल से आच्छादित रखते हैं तथापि अनन्य भक्त आपके वास्तविक प्रभुत्व को जान ही जाते हैं।' गलतागादी (जयपुर) के स्वामी श्रीहर्य्याचार्यजी कहते हैं- कि श्रीरामायण में प्रभु का ऐश्वर्य उसी प्रकार गुप्त है जिस प्रकार त्रिवेणी में सरस्वतीजी का प्रवाह। श्रीसीतारामजी के माधुर्य को तो सभी जानते हैं किन्तु श्रीरामायण में वर्णित ऐश्वर्य को कुछ मर्मज्ञ भक्त ही जान पाते हैं।

यद्यपि श्रीरामायण में श्रीविश्वामित्र यज्ञ रक्षण, अहल्यो-द्धार, शैवधनुर्भङ्ग, परशुराम पराजय, जटायु मोक्ष, सालभेदन, समुद्र में सेतु निर्माण, अयोध्यावासी चराचर जीव को परमधाम

प्रदान आदि लीलाओं द्वारा महर्षि ने श्रीराघवेन्द्र के परत्व का सम्यक् प्रतिपादन स्थल विशेष में किया है किन्तु माधुर्य का प्रतिपादन तो सर्वत्र है। माधुर्य स्वरूप में अज्ञानीजन मोहित होते हैं तथा भक्तगण आनन्द का अनुभव करते हैं।

पञ्चस्तवीकार ने भी कहा है— प्रभो ! मैं आपसे पूछता हूँ, जब आप श्रीरामरूप से अवतीर्ण हुये तब माया मृग के पीछे-पीछे दौड़ गये। श्रीसीताजी के वियोग में ऐसे विवश हुये कि रावण का भी आपको पता नहीं चला, फिर गीधराजको आपने परमधाम कैसे प्रदान किया? इससे स्पष्ट है कि जब आप गीधराज को साकेत का मार्ग बतला सकते हैं तब समुद्र पार लंका में विराजमान श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजी को अवश्य देख रहे होंगे। गीधराज के मोक्ष प्रदान का महर्षिने इसप्रकार वर्णन किया है— जो गति यज्ञशीलों को, अग्निहोत्र करने वालों को, भूमि प्रदान करने वालों को एवं मोक्ष प्राप्त करने वालों को प्राप्त होती है, वही गति मेरे अनुग्रह से आपको प्राप्त हो— वे सभी लोक आपको प्राप्त हों। यहाँ अपरावर्ती का अर्थ मोक्ष है क्योंकि श्रुतिमें कहा गया है कि भगवान् को प्राप्त कर जीव पुनः संसार में नहीं आता है। श्रीराघवेन्द्र की भगवत्ता का वर्णन करते हुए पञ्चस्तवीकार आगे कहते हैं कि नाथ ! आपने जब समुद्रपार नहीं किया था तथा रावण पर विजय प्राप्त नहीं की थी उसके बल का भी तब तक आपको पता नहीं था फिर उसके भ्राता विभीषण को आपने उसके पद पर निःसन्देह अभिषेक

कैसे कर दिया ! इससे तो स्पष्ट है कि आप संकल्प से रावण का वध कर चुके थे। अब केवल रावण वध का अभिनय मात्र अवशिष्ट था तभी तो बिना सन्देह विभीषणजी को रावण वध के पूर्व ही अभिषेक कर दिया। वास्तव में प्रभु मानव चरित करने के लिए अवतीर्ण हुये किन्तु देवताओं को चकित करने वाले अनेक चरित ऐसे हैं जिनमें प्रभु के ऐश्वर्य का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। इस प्रकार पञ्चस्तवी में ऐसे अनेक दिव्यचरित्रों का संकेत किया गया है जो रसास्वादन करने योग्य है ॥ ५ ॥

श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं-प्रभो! आप धीर पुरुषों के आत्मा तथा प्रियतम वासुदेव हैं। त्रिलोकी की किसी वस्तु में आपकी आसक्ति नहीं है। आप न तो श्रीमिथिलेशराजनन्दिनी के लिये मोह को ही प्राप्त हो सकते हैं तथा न श्रीलक्ष्मणकुमार का परित्याग ही कर सकते हैं ॥ ६ ॥

इस छठे श्लोक का व्याख्यान करते हुये श्रीधरस्वामी कहतेहैं कि विषयासक्ति के अभावसे श्रीराघवेन्द्र में दुःख का अभाव कह रहे हैं- भगवान् श्रीराम त्रिलोकी में कहीं भी आसक्त नहीं थे क्योंकि वे धीरों के आत्मा तथा सुहृत्प्रवर थे, अतः श्रीराज-किशोरी के लिए वे मोहित नहीं हो सकते थे। जब देवदूत से वार्तालाप कर रहे थे तब कह दिया था जो कोई इस वार्ता के मध्य में आयेगा वह वध्य होगा। दुर्वासा के आगमन की सूचना देने पर श्रीलक्ष्मणकुमार का परित्याग कर दिया। श्रीवीरराघव कहते हैं- श्रीराघवेन्द्र सांसारिक धर्मों से रहित सनकादिकों के

आत्मा हैं। आश्रित भक्तों के प्रति उनका अत्यन्त सौहार्द है-आश्रितों के प्रियतम हैं। ज्ञान-शक्ति आदि छह भग-ऐश्वर्यों से युक्त होने के कारण वे भगवान् हैं। जो चराचर में निवास करे तथा चराचर जिसमें निवास करे उसको वासुदेव कहते हैं। इस उक्ति के अनुसार प्रभु सर्वत्र विराजमान रहने पर भी चराचर के दोषों से रहित हैं। सभी को अपना धार्य एवं शेष जानकर धारणकर रखा है। वे त्रिलोकी की किसी भी वस्तु में आसक्त नही हैं। श्रीसीताजी के वियोग में वे दुःखी भी नहीं हुये केवल मनुष्यों को शिक्षा देने के लिये ही दुःखी की भाँति अभिनय किया। श्रीलक्ष्मणकुमार प्रभु के निवास, शय्या, आसन, पादुका, पीताम्बर, उपधान (तकिया), छत्र, आदि रूप में अपने शरीर को विभक्त कर उनकी सेवा में निरन्तर लगे रहते हैं ऐसे विश्लेष भीरू नित्य सेवा परायण श्रीलक्ष्मणकुमार का परित्याग उनके अवतार के अनुरूप नहीं कहा जा सकता। प्रभु के वन गमन के समय में श्रीलक्ष्मणकुमार ने कहा- आप तो श्रीविदेहनन्दिनी के साथ पर्वत शिखरों पर निवास करेंगे, और जागते सोते समय मैं आपकी समग्र सेवा करूँगा। आप मुझे अनुचर बना लीजिये इसमें कोई दोष नहीं है। मैं कृतार्थ हो जाऊँगा तथा आपका प्रयोजन सिद्ध होगा। इस प्रकार सभी अवस्थाओं में सभी प्रकार के नित्यकैंकर्य की प्रार्थना करने वाले श्रीलक्ष्मणकुमार का परित्याग कैसे सम्भव हो सकता है? गीता में भी कहा गया है- ज्ञानियों का मैं अत्यन्त प्रिय हूँ वे भी मेरे प्रिय हैं। विभीषण शरणागति

में प्रभु ने कहा है कि मित्र भाव से प्राप्त विभीषण का परित्याग मैं नहीं कर सकता। एक बार भी मेरी शरण में आकर जो कहता है मैं आपका हूं उसको मैं सभी प्राणियों से अभय प्रदान कर देता हूं। इस प्रकार अभय प्रदान करने वाले प्रभु, श्रीलक्ष्मण-कुमार जैसे महाभागवत का परित्याग कैसे कर सकते हैं ? यह तो केवल मनुष्यों को शिक्षा देने के लिये संसारी पुरुषों की चेष्टा का अनुसरण किया है। जगज्जननी श्रीजानकी जी भी प्रभु की नित्यानपायिनी हैं विष्णुपुराण में स्पष्ट है—

जगन्माता लक्ष्मीजी प्रभु की नित्य अनपायिनी हैं। श्रीराघवेन्द्र के साथ श्रीसीताजी, श्रीकृष्णावतार में श्रीरुक्मिणीजी एवं अन्य अवतारों में भी वे भगवान् की नित्य संगिनी हैं। ऐसी भगवती श्रीसीता का परित्याग केवल मनुष्यों को शिक्षा देने के लिए ही किया गया है। उत्तरकाण्ड में महर्षि ने इस प्रसंग का विवेचन किया है। आत्मवानों की आत्मा कहकर सूचित किया कि अमृत (परमात्मा) की प्राप्ति धन से नहीं होती। श्रवण मनन निदिध्यासन के द्वारा परमात्मा का दर्शन करना चाहिये इत्यादि श्रुतियों में वीतराग महापुरुषों के भगवान् उपास्य हैं इन श्रुतियों के आधार पर यह स्पष्ट है कि भगवान् के भक्त जब राग से रहित हैं तो स्वयं प्रभु का राग से रहित होना उचित ही है अतः स्त्री संयोग वियोग कृत सुख दुखादि का अभाव उनमें कहा गया। भगवान् शब्द से षड्गुणों से परिपूर्ण होने के कारण अवाप्त-समस्त काम प्रभु हैं, फिर स्त्रीसंगादि से होनेवाले

सुख का वहाँ क्या आदर हो सकता है ? सुहृत्तम इस शब्द से भगवान् को कृतज्ञ शिरोमणि कहा गया। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं--श्रीराघवेन्द्र का कोई जैसे तैसे छोटा भी उपकार कर देता है तो वे सन्तुष्ट हो जाते हैं तथा उनके सैकड़ों अपकारों का स्मरण नहीं करते। जब आश्रितों के सैकड़ों अपराधों का स्मरण नहीं करते तथा छोटे बड़े का विचार किये बिना ही उपकार का आभास पाते ही केवल आश्रयण के सम्बन्ध से ही जीवों का परित्याग नहीं करते फिर मर्त्यशिक्षण के अतिरिक्त श्रीसीता श्रीलक्ष्मण परित्याग का अन्य क्या कारण हो सकता है ?

श्री जीवगोस्वामी जी कहते हैं--इस श्लोक में वर्णित भगवान् श्रीराघवेन्द्र की लीला कामासक्त प्राकृत जन की भाँति नहीं है किन्तु स्वजनों के प्रति विशेष कृपासूचक ही है। श्लोक का अर्थ पूर्व व्याख्याताओं की भाँति करनेके पश्चात् आगे कहते हैं कि--श्रीलक्ष्मणकुमार का वास्तविक परित्याग प्रभु ने नहीं किया क्योंकि शीघ्र ही साकेत में श्रीसीताजी के साथ श्रीलक्ष्मण-कुमार प्रभु की प्रतीक्षा कर रहे थे, हनुमान्‌जी कहते हैं कि आज भी किम्पुरुष वर्ष में श्रीलक्ष्मणकुमार तथा श्रीसीताजी सहित श्रीराम का हम दर्शन कर रहे हैं। अतः मर्यादा की रक्षा के लिए ही थोड़ा बहुत अनुकरण किया है। इस श्लोक की व्याख्या करते हुये श्री चक्रवर्ती कहते हैं--

श्री रामभद्र प्रेमवश्य सत्यव्रती ब्रह्मण्य हैं। उनके ये गुण अप्राकृत हैं अतः श्रीसीताजी के वियोग में दुखी होना तथा

दुर्वासा के माध्यम से श्रीलक्ष्मणकुमार का परित्याग आदि लीला उनके पूर्वोक्त गुणों के अनुरूप ही है। यदि वे प्रेमपरवश नहीं होते तो प्राकृत मनुष्य की भाँति प्रिया के वियोग में दुखी क्यों होते, यदि वे सत्यव्रती एवं ब्रह्मण्य नहीं होते तो श्रीलक्ष्मणकुमार का परित्याग क्यों करते। वास्तव में वे त्रिलोकी में कहीं भी आसक्त नहीं थे, वे षडैश्वर्य से परिपूर्ण भगवान् थे। आत्मवान् महापुरुषों के आत्मा-सेव्य थे। धर्म एवं प्रेम शिक्षण के लिये उनकी यह लीला सर्वथा युक्तियुक्त थी।

'न वै' इस श्लोक से जगदात्मा श्रीराघवेन्द्र की चराचर जीवों के साथ शरीर–आत्मा के सम्बन्ध से एकता कही गई है। बृहदारण्यक में महर्षि याज्ञवल्क्य ने स्पष्ट कहा है कि जगदात्मा परब्रह्म के सम्बन्ध से ही जीवों की स्त्री–पति, भ्राता–माता पुत्र आदि में ममता है। श्रुति कहती है– 'पति के सुख के लिये पत्नी पति से प्रेम नहीं करती किन्तु अपने सुख के लिये ही पति से प्रेम करती है। ठीक इसी प्रकार पति भी पत्नी से अपने सुख के लिये ही प्रेम करता है। साथ ही पुत्र पिता आदि से भी अपने सुख के लिये प्रेम करता है। इससे स्पष्ट हो गया कि आत्मा ही एकमात्र परम प्रेष्ठ है अतः उसीका साक्षात्कार करना चाहिये। श्रुति की आज्ञा है कि श्रवण मनन निदिध्यासन के द्वारा पर–मात्मा का साक्षात्कार करना चाहिये।

ब्रह्मसूत्र में भी भगवान् व्यास ने कहा है कि 'परब्रह्म को अपना आत्मा समझकर उपासना करनी चाहिये। दूसरों को

भी ऐसा उपदेश करना चाहिये, जिस प्रकार जीवात्मा अपने स्थूल शरीर का आत्मा है उसी प्रकार परमात्मा भी जीवात्मा का आत्मा है। श्रुति में उपासक कहता है कि प्रभो! आप मेरी आत्मा हैं तथा मैं आपसे आत्मशरीर भाव से अभिन्न हूँ।

श्रुति कहती है–'यस्य आत्मा शरीरम्' जीवात्मा परब्रह्म का शरीर है। समस्त प्रजाओं की उत्पत्ति परमात्मा से ही हुई है उसी से रक्षित तथा अन्त में उसी में लीन होती है। चराचर जगत् ब्रह्मात्मक है। परमात्मा से उत्पन्न, रक्षित एवं उन्हीं में विलीन होने के कारण समस्त जीव भगवान् का नियाम्य है-उनका शरीर है।

जिस प्रकार जीवात्मा अपने शरीर से अभिन्न अपने को मानकर यह अनुभव करता है कि मैं देव हूँ, मैं मनुष्य हूँ, उसी प्रकार जीवात्मा भी परमात्मा के शरीर होने के कारण, परमात्मा को आत्मा मानकर यह अनुभव करता है कि मैं परमात्मा का हूँ तथा शरीरात्मभाव की दृष्टि से परमात्मा से अभिन्न हूँ इत्यादि। स्वामी श्री रामानुजाचार्य द्वारा इस संबन्ध में श्रीभाष्य में की गई व्याख्या मनन करने योग्य है।

वेदावतार श्रीरामायण में भी समस्त चराचर जगत् श्रीराघवेन्द्र का शरीर है ऐसा स्पष्ट कहा गया है--'जगत् सर्वं शरीरं ते।' यदि जगत् प्रभु का शरीर है तब शरीरभूत समस्त जगत् की आत्मा श्रीराम हैं। यद्यपि श्रीराम समस्त जगत् की आत्मा हैं किन्तु तत्ववेत्ता महात्मा ही उनको अपनी आत्मा के

रूप में जानते हैं अज्ञानी नहीं, अतएव श्रीरामायण में कहा गया है कि जिस प्रकार नदियाँ समुद्र को घेरे रहती हैं उसी प्रकार सन्तजन भी श्रीराघवेन्द्र को घेरे रहते हैं। श्रीरामभद्र सन्तों के उपास्य देवता हैं अतः इस श्लोक में उचित ही कहा गया कि श्रीराम आत्मवान् महात्माओंके आत्मा हैं-'आत्मवताम् आत्मा'।६।

उत्तमकुल में जन्म, सुन्दरता, वाक्चातुरी, बुद्धि तथा आकृति इनमें से कोई भी गुण लक्ष्मणाग्रज श्रीराघवेन्द्र की प्रसन्नता का कारण नहीं हो सकता है। इसी बात को दिखानेके लिये ही प्रभु ने इन सब गुणों से रहित हम वनवासी वानर भालुओं से मित्रता की है ॥ ७ ॥

व्याख्या—श्रीधरस्वामी कहते हैं पूर्व के श्लोकोंमें वर्णित गुणों के कारण यह निश्चय हो गया कि श्रीराम ही सबके सेव्य हैं क्योंकि उनकी प्रसन्नता के लिये सत्कुल में जन्म, सौन्दर्य जाति आदि की आवश्यकता नहीं है। श्रीराम समस्त दिव्यगुणों से सम्पन्न, श्रीलक्ष्मणकुमार के अग्रज हैं। अहो ! आश्चर्य है कि कहाँ श्रीलक्ष्मणकुमार कहाँ हम सब, पूर्वोक्त गुणों से हीन वानर भालूगण, फिर भी दीनवत्सल श्रीराघवेन्द्र ने हम सबको सखा बनाया।

श्रीवीरराघव कहते हैं—छोटे-बड़े, भले-बुरे के तारतम्य के विना जिनके आश्रयण मात्र से सर्वसाधन हीन जीव भी उनके परम पावन प्रेम का पात्र बन जाता है—यह बात इसी अवतार में देखने योग्य है, इसी विषय का प्रतिपादन 'न जन्म' इस श्लोक से किया गया है।

सत्कुल जन्म आदि से रहित, पापी जीवों की भी आश्रय ग्रहण कर लेने मात्र से रक्षा करने के लिये कटिवद्ध श्रीराघवेन्द्र की प्रसन्नता के लिये ब्राह्मणकुल में जन्म होना सौन्दर्य, अध्ययन, सुबुद्धि, जाति आदि गुणों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तिर्यग् योनि में उत्पन्न हम वानर भालुओं पर उनकी कृपा का प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है। वास्तव में इस प्रकार दीनवत्सल अकारण कारुणिक प्रभु की कृपा का वर्णन वाणी के द्वारा सम्भव नहीं है।

श्रीजीव गोस्वामी अपने इस सन्दर्भ का उपसंहार करते हुये अवशिष्ट दो श्लोकों की व्याख्या करते हुये कहते हैं—पूर्व के श्लोकों में किये गये अर्थों के अनुरूप ही आगे के दो श्लोकों द्वारा भक्तिके मुख्य कारण श्रीरामजी की करुणा का माधुर्य सर्वोपरि है इसी विषय का प्रतिपादन करना है। श्रीहनुमान्जी कहते हैं—महत्कुल में जन्म, सौन्दर्य जाति आदि से रहित हम वनचारियों पर अहैतुकी कृपा प्रभु ने की है। श्रीजनकनन्दिनी के अन्वेषण की सेवासे सन्तुष्ट होकर प्रभुने हमपर विशेष कृपा की। सर्वसद्गुण सम्पन्न श्रीसुमित्रानन्दवर्धन के अग्रज होते हुये भी दास के योग्य हम वानर--भालुओं के साथ-साथ वनों में विहार किया तथा सखाओं की भाँति स्वीकार किया। अहो ! ऐसी कृपालुता अन्यत्र देखने को नहीं मिलेगी। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती तथा गोस्वामी श्रीगिरिधरलालजी कहते हैं कि अनन्तकल्याण गुणगणसम्पन्न, परमऐश्वर्य से युक्त परमेश्वर यदि श्रीराम हैं तव

उनके भजन में सत्कुल में जन्म लेने वाले महापुरुषों का ही अधि-
कार होना चाहिये। जन्म सौन्दर्य जाति आदि गुणों से हीन
पामरों के भजन से प्रभु को सन्तोष नहीं होगा। तथा भजन भी
व्यर्थ हो जायगा। इस शंका का समाधान करते हुये कहते हैं-
वास्तव में श्रीराघवेन्द्र के भजन करने के लिये सत्कुल में जन्म
होना आवश्यक नहीं है क्योंकि श्रीरामजी अहैतुकी कृपाके समुद्र
हैं अतः उनको प्रसन्न करने के लिये एक भक्ति की ही आवश्य-
कता है। अतएव प्राणीमात्र को उन्हीं का भजन करना चाहिए।
निश्चित ही श्रीरामजी की प्रसन्नता के लिए सत्कुलमें जन्म होना
आवश्यक नहीं है। क्योंकि सत्कुलजन्मादि अनेक कल्याण गुण-
गण सम्पन्न श्रीलक्ष्मणकुमार प्रभु की सेवा में सदा विराजमान
रहते हैं। उन्हीं के समक्ष हम गुणहीन वानरों को सखा के रूप में
अङ्गीकार किया। यदि कोई शंका करे कि जगज्जननी श्रीजानकी
जी के अन्वेषण आदि कार्य के लिए प्रभु ने वानरों से मित्रता
की इसमें क्या आश्चर्य है? इस शंका का समाधान करते हुए
कहते हैं--सर्वज्ञ शिरोमणि सर्वसमर्थ प्रभु दूसरे की सहायता के
विना ही जब अनन्त ब्रह्माण्ड की रचना कर डालते हैं, अतः उन्हें
श्रीसीता अन्वेषणादि कार्यों के लिए वानरों की क्या आवश्यकता
थी? वास्तव में वानरों के साथ मित्रता करने में केवल कृपा ही
हेतु है। उसी कृपा पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए श्लोक में 'बत'
शब्द का प्रयोग किया गया। नवम स्कन्ध में श्रीशुकदेवजी कहते
हैं-परीक्षित् भगवान् श्रीराम के समान ऐश्वर्यशाली अन्य कोई

नहीं है फिर उनसे बढ़कर तो कोई हो ही कैसे सकता है? उन्होंने देवताओं की प्रार्थना से ही यह लीला विग्रह धारण किया था। ऐसी स्थिति में रघुवंशभूषण श्रीराम के लिए यह कोई महान् गौरव की बात नहीं है कि उन्होंने अस्त्र-शस्त्रों से राक्षसों का वध किया एवं समुद्र पर पुल बाँध दिया। शत्रुओं को मारने के लिए उन्हें वानरों की सहायता की आवश्यकता थी क्या? यह सब उनकी लीला ही है। वास्तव में वानरों पर कृपा कर सेवा का अवसर प्रदानकर उन्हें कृतार्थ किया-'किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः'। श्रीमद्रामायण में श्रीहनुमान्‌जी को समस्त वेद-शास्त्र में पारंगत तथा वैराग्य, ज्ञान, भक्ति आदि सद्‌गुणों का घर कहा गया है। किष्किन्धाकांड में श्रीराघवेन्द्र ने तथा लंका-कांड में जगज्जननी श्रीजानकीजी ने इनके अलौकिक गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है, उत्तरकाण्ड में स्वयं प्रभु ने श्रीमुख से श्रीमन्मारुतनन्दन का यशोगान किया है। उन सभी श्लोकों का व्याख्यान 'परम भागवतो हनुमान्' इस प्रसंग में किया जा चुका है। इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जी अनन्त दिव्यगुणों से सम्पन्न हैं किन्तु षड्‌विधा (छह प्रकार की) शरणागति में एक कार्पण्य भी है। जिसमें शरणागत अपनी दीनता का सदा अनुसन्धान करता रहता है उसी कार्पण्य का आश्रय लेकर श्रीहनुमान्‌जी ने कहा है कि सत्कुल जन्म आदि गुणों से हीन हम वानरों को प्रभु ने सखा बनाया। वास्तव में श्रीहनुमान् जी महान् हैं ॥ ७ ॥

देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य-कोई भी हो, उसे सब प्रकार से श्रीरामजी का ही भजन करना चाहिये, क्योंकि

श्रीराम नर रूप में साक्षात् हरि ही हैं, तथा स्वल्प उपकार को
बहुत अधिक मानते हैं। श्रीराघवेन्द्र ऐसे आश्रित वत्सल हैं कि
जब स्वयं अपने दिव्य धाम साकेत पधारे तब समस्त उत्तर
कोसल वासियों को भी अपने साथ ही ले गये थे ॥८॥

श्रीधर स्वामी कहते हैं—सुर-असुर, नर-वानर जो कोई
भी हो उसे सब प्रकार से श्रीरामजी का ही भजन करना चाहिये,
क्योंकि प्रभु सुकृतज्ञ हैं, थोड़े भजन को बहुत अधिक मानते हैं,
तभी तो समस्त अयोध्या वासी जड़ चेतन, कीट-पतङ्ग को
अपने साथ दिव्य धाम ले गये। श्रीवीरराघव कहते हैं—
श्रीराम सुकृतज्ञ हैं तभी तो श्रीहनुमान्‌जी से कहा-हनुमान्‌जी !
आपने जो उपकार किया है वह मेरे शरीर में ही विलीन हो
जाय क्योंकि मनुष्य आपत्ति आने पर ही किसी दूसरे का प्रत्युप-
कार करता है। आप पर न आपत्ति आवे न हमको प्रत्युपकार
करने का अवसर प्राप्त हो। इस प्रकार प्रत्युपकार के एकमात्र
ज्ञाता श्रीरामभद्र का ही सुर असुर, नर वानर सबको भजन
करना चाहिए।

'सर्वात्मना' सब प्रकार से भजन करना चाहिये। सब
प्रकार में जिससे भी प्रभु हमको अपना जन मानलें वही प्रकार
श्रेष्ठ है। इसका स्पष्ट उदाहरण अयोध्याके जड़-चेतन जीव हैं।
अयोध्या के तृण लता, गुल्म आदि को इसीलिये प्रभु अपने
साथ दिव्यधाम ले गये कि वे लता गुल्म प्रभु के देशवासी ग्राम-
वासी थे। मानस में स्पष्ट है —

'अति प्रिय मोहि इहाँ के वासी। मम धामदा पुरी सुखरासी॥'

श्रीवीरराघव आगे कहते हैं कि– कर्म ज्ञान भक्ति आदि साधनों की अपेक्षा किये बिना व्याजमात्र-भजन लेशमात्र से ही प्रभु जीवों पर अनुग्रह करते हैं। दाक्षिणात्य आचार्य श्रीवत्साङ्कमिश्रने कहा है—हे करुणामृतसागर! शास्त्र एवं महापुरुषगण कर्म-ज्ञान भक्ति से आपकी प्राप्ति बतलाते हैं किन्तु इन साधनों में कौन सा साधन अयोध्या के तृण-लतागुल्म ने किया था, जिनको आपने निज दिव्यधाम प्रदान किया?

श्रीजीवगोस्वामी कहते हैं– पूर्व श्लोक से स्वरूपज्ञानमय भक्ति के द्वारा मनुष्य की आकृति में परस्वरूप का दर्शन कराया, इस श्लोक से माधुर्य ज्ञानमय भक्ति के द्वारा विशेष रूप से उसी स्वरूप का साक्षात्कार कर रहे हैं—मनुज की आकृति में श्रीराम साक्षात् श्रीहरि हैं। कपिल आदि अन्य अवतारों के निषेध के लिये 'रामम्' श्रीराम शब्द का प्रयोग किया गया। उत्तमम् का अर्थ है असमोर्ध्व गुणसम्पन्न। सुकृतज्ञ का अर्थ है भक्ति लेशमात्र से श्रीराम सन्तुष्ट हो जाते हैं।

श्री चक्रवर्ती कहते हैं—श्रीहनुमान्जी ने पूर्व के श्लोक में साधन हीन वानरों पर श्रीराघवेन्द्र की अहैतुकी कृपा का वर्णन किया। अब इस अन्तिम श्लोक से कह रहे हैं कि भजन करने योग्य समस्त अवतारों में श्रीराम ही कृपासिन्धु हैं—विशेषरूप से भजन करने योग्य हैं, क्योंकि श्रीराम भजन में सुर असुर, नर-वानर समान रूप से सब अधिकारी हैं। तभी तो समस्त

अयोध्यावासी जड़-चेतनों को सशरीर वैकुण्ठ (साकेत) अपने साथ ले गये।

'सुरोऽसुरो वा' इस अन्तिम श्लोक से श्रीव्यासजीने इस प्रसङ्ग का समापन करते हुए श्रीमद्भागवत के सिद्धान्त का वर्णन कर दिया है। 'भजेत रामम्' श्रीरामजी का ही भजन करना चाहिये यह सिद्धान्त निरूपित किया तथा श्रीरामजी के भजन करने में सुर-असुर, नर-वानर सभी को अधिकार है–इस प्रकार अधिकारी भी निरूपण कर दिया।

श्रीरामतापनीय श्रुति कहती है–योगीजन जिन अनन्त सच्चिदानन्द श्रीराम में रमण करते हैं ऐसे श्रीराम अभिधावृत्ति से परब्रह्म के बोधक हैं। 'मनुजाकृति' इस पद से श्रीराघवेन्द्र का सौलभ्य कहा गया है। महर्षि ने अयोध्याकाण्ड में कहा है–उद्भट रावण के वध की कामना से देवताओं ने जब भगवान् से प्रार्थना की तब साक्षात् विष्णु-परवासुदेव इस मनुष्यलोक में श्रीरामरूप से अवतीर्ण हुये। जिस मनुष्यलोक में देवतागण भी मनुष्य की गन्ध को सहन करने में असमर्थ हैं तथा मनुष्यलोक की भर्त्सना करते हुए कई योजन ऊपर से ही यज्ञ में हविष्य ग्रहण करते हैं, ऐसे लोक में प्रभु अवतीर्ण हुये। हन्त ! प्रभु के इस सौलभ्य गुण की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। श्रीरामजी हरि हैं–भक्तों के दुखों का हरण करने वाले हैं अथवा भक्तों के चित्त का हरण करने वाले हैं। महर्षि ने कहा है–अपने रूप एवं औदार्यगुणों से श्रीराम पुरुषों के चित्त का भी

हरण कर लेते हैं। कठिन चित्तवाले पुरुषों के चित्त का हरण कर लेते हैं फिर स्त्रियों के चित्त का हरण कर लें इसमें क्या आश्चर्य है। अथवा 'पुमान्' पद से स्त्री-पुरुष सभी का ग्रहण होता है, विष्णुपुराण में कहा गया है कि समस्त जगत् के जीव प्रायः स्त्री हैं, पुरुष केवल भगवान् ही हैं-'पुमान् एकः व्यवस्थितः' इस प्रमाण से स्त्री-पुरुष नपुंसक देव-दानव, पशु-पक्षी आदि भेद भाव के बिना समस्त चराचर जीवों के चित्त का अपहरण करने में श्रीराघवेन्द्र समर्थ हैं-यह सिद्ध हुआ। अयोध्याकाण्ड में श्री-राघवेन्द्र के विरह में स्थावर जंगम-सबका दुख वर्णित है। प्रभु के वियोग में जड़-चेतन सब मुरझा गये। श्रीसुमन्तजी महाराज श्रीदशरथजी से श्रीअयोध्याजी के स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, लता-वृक्ष सबकी दयनीय दशा का वर्णन करते हुये कहते हैं-महाराज! आपके राज्य में श्रीराघवेन्द्र के वियोग में पुष्प अंकुर कलियों सहित वृक्ष मुरझा गये हैं। नदियों, छोटे जलाशयों तथा बड़े सरोवरों के जल गरम हो गये हैं। वनों तथा उपवनों के पत्ते सूख गये हैं। वन के जीव जन्तु आहार के लिए भी कहीं नहीं जाते हैं। अजगर आदि सर्प भी जहाँ तहाँ पड़े हैं। आगे नहीं बढ़ते हैं। श्रीराम के शोक से पीड़ित समस्त वन नीरव सा हो गया है। नदियों के जल मलिन हो गए हैं। उनमें विकसित कमलों के पत्ते गल गए हैं। सरोवरों के कमल भी सूख गये हैं। उनमें रहने वाले मत्स्य तथा पक्षी भी नष्टप्राय हो गए हैं। जल तथा स्थल में उत्पन्न होने वाले पुष्प भी स्वल्प सुगन्ध होने के कारण अधिक शोभा नहीं पाते हैं तथा फल भी पूर्ववत् दृष्टि-

गोचर नहीं होते हैं। नरश्रेष्ठ ! अयोध्या के उद्यान भी शून्य हो गये हैं। उनमें रहने वाले पक्षी भी कहीं छिप गये हैं। यहाँ की वाटिका भी मुझे पूर्व की भांति मनोहर नहीं दिखायी देती। इत्यादि श्लोकों से श्रीराघवेन्द्र के विरह में चराचर जीवों की म्लानता का वर्णन किया गया। दाक्षिणात्य सन्त लिखते हैं कि-अयोध्या के वृक्ष श्रीराघवेन्द्र के संयोगमें हरे रहते हैं तथा वियोग में सूख जाते हैं।

'मनुजाकृतिं हरिम्' इस श्लोक में हरि शब्द का सर्वहृदयहारी अर्थ पूर्वोक्त प्रसंग में स्पष्ट किया गया। इस प्रकार हरि-शब्द के सर्वक्लेशहारी तथा सर्वहृदयहारी दोनों अर्थ होते हैं। 'य उत्तरान् अनयत् कोसलान् दिवम्' इस वाक्य से श्रीराघवेन्द्र के असाधारण ऐश्यर्य का वर्णन किया गया। पूर्वाचार्यों ने कहा है-मोक्ष प्रदान करना ही भगवान् का असाधारण ऐश्वर्य है। कोसल देशवासी जनों को मोक्ष प्रदान करने से इस ऐश्वर्य का उत्तरकांडमें सम्यक् वर्णन किया गया है। रात्रि व्यतीत होने पर जब प्रातःकाल हुआ तब विशाल वक्षःस्थल वाले महायशस्वी राजीवलोचन श्रीराम पुरोहित श्रीवसिष्ठजी से बोले--मेरे अग्नि-होत्र की प्रज्वलित अग्नि ब्राह्मणों के साथ आगे-आगे चले। महाप्रयाण के पथ पर इस यात्रा के समय मेरे बाजपेय यज्ञ का सुन्दर छत्र भी चलना चाहिए। उनके इस प्रकार कहने पर तेजस्वी श्रीवसिष्ठ मुनि ने महान् प्रस्थानकाल के लिए समुचित समस्त धार्मिक क्रियाओं का विधिपूर्वक पूर्णतः अनुष्ठान किया।

पुन: भगवान् श्रीराम सूक्ष्म वस्त्र धारण कर, दोनों हाथों में कुश लेकर परब्रह्म के प्रतिपादक वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हुए सरयू नदी के तट पर चले। उस समय वेदपाठ के अतिरिक्त कहीं किसी से और कोई बात नहीं करते थे। गमन के अतिरिक्त उनमें कोई दूसरी चेष्टा नहीं दिखायी देती थी। तथा वे लौकिक सुख का परित्याग कर देदीप्यमान सूर्य की भाँति प्रकाशित होते हुए राजभवन से निकल कर गन्तव्य पथ की ओर बढ़ रहे थे। भगवान् श्रीराम के दक्षिण पार्श्व में कमल हाथ में लिए श्रीदेवी उपस्थित थीं। वाम भाग में भूदेवी विराजमान थीं। तथा आगे-आगे उनकी व्यवसाय (संहारशक्ति) चलरही थी। नाना प्रकार के बाण विशाल एवं उत्तम धनुष तथा अन्य अस्त्र शस्त्र सभी पुरुष शरीर धारण कर प्रभु के साथ चले। चारों वेद ब्राह्मण का रूप धारण कर चल रहे थे। सबकी रक्षा करने वाली गायत्री देवी, ॐकार तथा वषट्कार सभी भक्ति भाव से श्रीराम का अनुसरण कर रहे थे। महात्मा ऋषि तथा समस्त ब्राह्मण भी दिव्यलोक के खुले हुए द्वार स्वरूप भगवान् श्रीराम के पीछे-पीछे गये। अन्तःपुर की स्त्रियाँ भी बालकों, वृद्धों, दासियों तथा अन्य सेवकों के साथ निकलकर सरयू तट की ओर जाते हुए श्रीराम के पीछे-पीछे जा रहीं थीं। श्रीभरत तथा श्रीशत्रुघ्न अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ अपने आश्रय स्वरूप भगवान् श्रीराम के पीछे-पीछे चल रहे थे। वे सब महामनस्वी श्रेष्ठ पुरुष एवं ब्राह्मण अग्निहोत्र की अग्नि तथा स्त्री पुत्रों के साथ इस महाप्रयाण में सम्मिलित होकर परम बुद्धिमान् श्रीरामजीका अनुगमनकर रहे थे।

समस्त मन्त्री तथा भृत्यवर्ग भी अपने पुत्रों, पशुओं, बन्धुओं तथा अनुचरों सहित हर्षपूर्वक श्रीराम के पीछे-पीछे चल रहे थे। हृष्ट पुष्ट मनुष्यों से परिपूर्ण समस्त प्रजा-जन श्रीरघुनाथजी के गुणों पर मुग्ध थे, अतः वे स्त्री, पुरुष, पशु, पक्षी तथा बान्धवों सहित उस महायात्रा में श्रीराम का अनुगमन कर रहे थे। उन सबके हृदय में प्रसन्नता थी तथा वे सभी पाप से रहित थे। सम्पूर्ण हृष्ट-पुष्ट वानरगण भी स्नान कर, बड़ी प्रसन्नता के साथ किल-कारियाँ मारते हुये भगवान् श्रीरामजी के साथ जा रहे थे, वह समस्त समुदाय ही श्रीराघवेन्द्र का परम भक्त था। उनमें कोई भी ऐसा नहीं था जो दीन-दुःखी अथवा लज्जित हो। वहां एकत्र समस्त जीवों के हृदय में महान् हर्ष था। इस प्रकार वह जन-समुदाय अत्यन्त आश्चर्यजनक जान पड़ता था। श्रीराम की यात्रा देखने के लिए जनपद के लोगों में से जो आये थे वह भी इस समारोह को देखते ही भगवान् के साथ परमधाम जाने को उद्यत हो गये। रीछ, वानर, राक्षस, तथा पुरवासी मनुष्य अत्यन्त भक्ति के साथ एकाग्रचित्त होकर श्रीराघवेन्द्र के पीछे-पीछे चले आ रहे थे। श्रीअयोध्या नगर में जो अदृश्य प्राणी रहते थे वे भी साकेतधाम जाने के लिए उद्यत श्रीराघवेन्द्र के पीछे-पीछे चल दिये। चराचर प्राणियों में से जो भी श्रीरघुनाथजी को जाते देखते थे। वे सभी उस यात्रा में उनके पीछे-पीछे चल देते थे। उस समय श्रीअयोध्याजी में साँस लेने वाला कोई छोटे से छोटा प्राणी भी नहीं बचा जो प्रभु के साथ नहीं गया। तिर्यग्योनि के समस्त जीव भी श्रीराम में भक्ति भाव रखकर उनके पीछे-पीछे

चले जा रहे थे। इस सर्ग में महर्षि भक्तों के साथ श्रीराम के पर-धाम गमन का वर्णन करते हैं।

राजीवलोचन श्रीराम पुरोहित श्रीवसिष्ठजी से बोले ब्राह्मणों सहित मेरा प्रज्वलित अग्निहोत्र तथा वाजपेय छत्र साकेत के मार्ग में आगे-आगे चले। महाप्रस्थान कालिक धार्मिक विधि श्रीवसिष्ठजी ने विधिपूर्वक सम्पन्न की। तदनन्तर सूक्ष्म वस्त्र धारण कर भगवान् श्रीराम हाथ में कुश ग्रहण कर वेदमंत्र का उच्चारण करते हुए श्रीसरयू तट पधारे। भगवान् श्रीरामके दक्षिण भाग में हाथ में कमल लिए श्रीलक्ष्मीजी स्थित थीं। वाम भाग में भूदेवी विराजमान थीं तथा आगे-आगे संहार शक्ति चल रही थी। श्रुति में ह्री तथा लक्ष्मी भगवान् को पत्नियाँ कही गयी हैं। यहाँ ह्री का अर्थ भूमि तथा व्यवाय का अर्थ सहार-शक्ति-नागेशभट्ट ने किया है। शिरोमणिकार कहते हैं—पद्मा श्रीभरतजी की पत्नी, क्षीरसमुद्र के स्वामी श्रीलक्ष्मणकुमार की पत्नी श्री, श्रीरामजी के दक्षिण भाग में विराजमान हैं। भूम नारायण श्रीशत्रुघ्न की स्त्री भूमिदेवी वाम भाग में विराजमान हैं। श्रीरघुनाथजी की सहार-शक्ति आगे चल रही है। नाना प्रकार के बाण, विशाल उत्तम धनुष तथा अनेक आयुध पुरुष विग्रह धारण कर आगे-आगे चल रहे थे। संहारशक्ति के सहयोगी मूर्त रूप धारण कर बाण के रूप में चल रहे थे। इस प्रकार यहाँ रौद्र शक्ति की सेवा कही गयी। अब हैरण्यगभ शक्ति की सेवा का वर्णन करते हैं। समस्त वेदों का मूल यज्ञ यागादि अशेष जगत् की रक्षा करने वाली गायत्री तथा उनका

भी मूल ॐकार पीछे–पीछे चले। इससे समस्त ज्ञानयोग का संकेत किया गया। वषट्कार से कर्मयोग तथा ब्राह्मण रूप से सभी वेद श्रीरघुनाथजी के पीछे–पीछे चले, यह तिलककार का मत है।

माया के आवरण से रहित साकेत प्राप्ति के साधनस्वरूप श्रीरघुनाथजी के पीछे–पीछे ऋषिगण चले। सरयू की ओर जाते हुये श्रीरामजी के पीछे–पीछे अन्तःपुर की स्त्रियाँ, बाल, वृद्ध, दासी–दास भी चले। शत्रुघ्नजी तथा अन्तःपुर के सहित श्रीभरतजी श्रीरामजी के पीछे–पीछे चले। अग्निहोत्र तथा पुत्र कलत्र के साथ समस्त ब्राह्मण श्रीराघवेन्द्र के पीछे–पीछे चले। पुत्र कलत्र, बन्धु, बान्धव सहित मन्त्री एवं भृत्यवर्ग सभी प्रसन्नतापूर्वक श्रीरामजी के पीछे–पीछे चले। धाम गमन के समय प्रभु के समीप निवास प्राप्त होगा अतः सभी को हर्ष है। श्रीरघुनाथजी के गुणों से आकृष्ट होकर समस्त जीव प्रसन्नता-पूर्वक उनके पीछे-पीछे चले। समस्त वानर भी स्नानकर प्रसन्नता पूर्वक किलकारी द्वारा अपने हर्ष को प्रकट करते हुये श्रीरामजी के पीछे–पीछे चले। उनके मध्य में कोई भी दीन नहीं था अथवा कोई भी लज्जित एवं दुःखी नहीं था। किसी के द्वारा पूर्व में भगवान का कोई अपराध नहीं बना था अतः लज्जा नहीं थी। श्रीअयोध्यापुरी में अदृश्य रूप से रहने वाले प्राणी भी श्रीराघवेन्द्र के पीछे–पीछे चले। तिलककार कहते हैं– अदृश्य प्राणी से यहाँ भूत,प्रेत, पिशाच, भद्रकाली आदि का प्रभु के साथ जाना

वर्णित है। जड़ चेतन भी प्रभु के पीछे-पीछे चले। भगवान् श्रीरामजी की कृपादृष्टि से उस समय ज्ञान क्रिया शक्ति का स्थावरों में प्रादुर्भाव हुआ अतः जड़ प्राणी भी प्रभु के पीछे-पीछे चले। तिर्यग्योनि में उत्पन्न प्राणी भी प्रभु के पीछे चले। अतः श्वास लेने वाले-प्राणधारण करने वालों में से एक भी ऐसा प्राणी नहीं बचा जो प्रभु के साथ न गया हो।

श्रीअयोध्यापुरी से डेढ़ योजन दूर जाकर श्रीरघुनन्दन ने पश्चिमाभिमुख होकर पुण्यसलिला श्रीसरयूजी का दर्शन किया। श्रीसरयूजी में सब ओर भँवरे उठ रही थीं वहाँ सर्वत्र भ्रमणकर श्रीरघुनन्दन प्रजाजनों के साथ एक उत्तम स्थान पर पधारे। उसी समय लोक पितामह ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओं तथा ऋषि मुनियों से घिरे हुए उस स्थान पर आ पहुँचे जहाँ श्रीरघुनाथजी परमधाम पधारने के लिये उपस्थित थे। ब्रह्माजी के साथ करोड़ों दिव्य विमान शोभा पा रहे थे। समस्त आकाश-मण्डल दिव्य तेज से व्याप्त होकर अत्यन्त उत्तम ज्योतिर्मय हो रहा था। पुण्यकर्म करने वाले स्वर्गवासी स्वयं प्रकाशित होने वाले अपने तेज से उस स्थान को प्रकाशित कर रहे थे। परम पवित्र सुगन्धित एवं सुखदायिनी वायु चलने लगी। देवताओं द्वारा दिव्य पुष्प समूहों की भारी वर्षा होने लगी। उस समय सैकड़ों प्रकार के बाजे बजने लगे, तथा गन्धर्वों एवं अप्सराओं से वहाँ का स्थान भर गया। इतने में ही श्रीराघवेन्द्र सरयू के जल में प्रवेश करने के लिए दोनों चरणों से आगे बढ़ने लगे। तब ब्रह्माजी आकाश

से ही बोले-श्रीविष्णुस्वरूप रघुनन्दन! आइए आपका कल्याण हो। हमारा बड़ा सौभाग्य है जो आप अपने परमधाम को पधार रहे हैं। महाबाहो ! आप देवतुल्य तेजस्वी भ्राताओं के साथ अपने स्वरूपभूत लोक में प्रवेश करें। आप जिस स्वरूपमें प्रवेश करना चाहें अपने उसी स्वरूप में प्रवेश करें। महातेजस्वी परमेश्वर ! आपकी इच्छा हो तो विष्णुरूप में प्रवेश करें अथवा अपने सनातन आकाशमय अव्यक्त ब्रह्मरूप में ही विराजमान हों। देव ! आप ही सम्पूर्ण लोकों के आश्रय हैं। आपकी पुरातन पत्नी ह्लादिनी शक्ति योगमाया स्वरूप जो विशाललोचना श्रीसीतादेवी हैं उनको छोड़कर अन्य कोई आपको यथार्थ रूप से नहीं जानते हैं। क्योंकि आप अचिन्त्य अविनाशी तथा जरा आदि अवस्थाओं से रहित परब्रह्म हैं। अतः महातेजस्वी श्रीराघवेन्द्र! आप जिसमें चाहें अपने उसी स्वरूप में प्रवेश करें।

पितामह ब्रह्माजी की यह बात सुनकर परम सर्वज्ञ श्रीरघुनाथजी ने कुछ निश्चय कर भ्राताओं के साथ सशरीर अपने वैष्णव तेज में प्रवेश किया। तदनन्तर इन्द्र, अग्नि आदि सब देवता, साध्य तथा मरुद्गण भी विष्णुस्वरूप में स्थित भगवान् श्रीराम की पूजा-स्तुति करने लगे। दिव्य ऋषि,गन्धर्व, अप्सरा, गरुड़, नाग,यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस आदि भी भगवान् का गुणगान करने लगे। उन देवताओं ने कहा—प्रभो ! यहाँ आपके पदार्पण से देवलोक वासियों का यह सम्पूर्ण समुदाय सफल मनोरथ होने के कारण हृष्ट पुष्ट एवं आनन्दमग्न हो गया है। सबके

पार-तार नष्ट हो गये हैं। प्रभो! आपको हमारा कोटिशः साधुवाद है। तत्पश्चात् विष्णुरूप में विराजमान महातेजस्वी श्रीराम ब्रह्माजी से बोले—उत्तम व्रत का पालन करने वाले पितामह! इस समस्त जन-समुदाय को भी आप उत्तम लोक प्रदान करें। ये सब लोग स्नेह वश मेरे पीछे आये हैं। ये सबके सब यशस्वी तथा मेरे भक्त हैं। इन्होंने मेरे लिए अपने लौकिक सुखों का परित्याग कर दिया है अतः ये सर्वथा मेरे अनुग्रह के पात्र हैं। विष्णुस्वरूप भगवान् श्रीराम का यह वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले—भगवन्! यहाँ आये हुए ये सब लोग सान्तानिक नामक लोकों में जायेंगे। पशु-पक्षियों की योनियों में पड़े हुए जीवों में से भी जो कोई आपका ही भक्तिभाव से चिन्तन करता हुआ प्राणों का परित्याग करेगा वह भी सान्तानिक लोकों में ही निवास करेगा। यह सान्तानिक लोक साकेत धाम का ही अंग तथा ब्रह्मलोक के ही निकट है। वह ब्रह्म के सत्यसंकल्पत्व आदि सभी उत्तम गुणों से युक्त है उसी में आपके ये भक्तगण निवास करेंगे।

जिन वानरों तथा ऋक्षों (रीछों) की देवताओं से उत्पत्ति हुई थी वे अपनी-अपनी योनि में ही मिल गये। सुग्रीव ने सूर्यमण्डल में प्रवेश किया, उसी प्रकार अन्य वानर भी सब देवताओं के देखते-देखते अपने-अपने पिता के स्वरूप को प्राप्त हो गये। ब्रह्माजी ने जब सान्तानिक लोकों की प्राप्ति की घोषणा की तब श्रीसरयू के गोप्रतारघाट पर आये हुये उन सब लोगों ने आनन्द की अश्रुधारा बहाते हुए श्रीसरयू के जल में अवगाहन किया। जिस जिसने सरयूजल में गोता लगाया वे सब बड़े हर्ष के साथ

प्राणों सहित मनुष्य शरीर को त्याग कर विमान पर विराजमान हो गए। पशु पक्षी की योनि में पड़े हुए सैकड़ों प्राणी श्रीसरयू के जल में गोता लगाकर तेजस्वी शरीर धारणकर दिव्यलोक में जाकर विराजे।

वे दिव्य शरीर धारण कर दिव्य अवस्था में स्थित होकर देवताओं के समान दीप्तिमान हो गये। स्थावर तथा जंगम सभी भाँति के प्राणी श्रीसरयू के जल में प्रवेश कर उस जल से अपने शरीर को भिगोकर दिव्यलोक में जा पहुँचे। उस समय जो कोई भी रीछ, वानर अथवा राक्षस वहाँ आ गये, वे सभी अपने शरीर को श्रीसरयू के जल में डालकर प्रभु के परमधाम में जा पहुँचे। इस प्रकार वहाँ आए हुये समस्त प्राणियों को सान्तानिक लोकों में स्थान देकर लोकगुरु ब्रह्माजी हर्ष तथा आनन्द से परिपूर्ण होकर देवताओं के साथ अपने धाम में चले गये।

इस सर्ग में श्रीराम ने अपने स्वरूप को प्राप्त कर पश्चात् समस्त स्थावर-जंगम जीवों को सान्तानिक लोक (साकेत) की प्राप्ति करायी, इस वृत्तान्त का विस्तृत वर्णन करते हैं। अयोध्यानगरी से डेढ़ योजन दूर जाकर श्रीराम ने पश्चिमाभिमुख स्थित होकर पुण्यसलिला श्रीसरयूजी की शोभा का अवलोकन किया।

श्रीसरयूजी का विशेषण यहाँ पुण्यसलिला दिया गया है— इससे श्रीसरयूजी का साक्षात् ब्रह्मद्रव होना सूचित किया गया है। श्रीमद्रामायण में महर्षि श्रीविश्वामित्रजी ने श्रीराम से

श्रीसरयूजी की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए कहा—श्रीराम ! कैलाश पर्वत पर ब्रह्माजी ने मन से एक सरोवर का निर्माण किया अतः उसका नाम मानस सरोवर पड़ा। उसी पवित्र ब्रह्म सरोवर से प्रकट होने के कारण इनका नाम सरयू पड़ा, जो श्री-अयोध्याजी का आलिङ्गन कर रहीं हैं। सरोवर से निकलने के कारण सरयू नाम पड़ा। श्रीरुद्रयामल में शिव—पार्वती संवाद में श्रीअयोध्यामहात्म्य का वर्णन करते समय श्रीसरयूजी के प्रादु-र्भाव का भी वर्णन है। वहाँ वासिष्ठी, रामगंगा, नेत्रजा, मानस-नन्दिनी आदि श्रीसरयू के अनेक नाम कहे गये हैं। श्रीसरयूजी की महिमा का उपसंहार करते हुए श्रीशिवजी ने श्रीपार्वतीजी से कहा—हजारों मन्वन्तर पर्यन्त काशीवास से जो फल प्राप्त होता है, वह फल श्रीसरयूजी के दर्शन-मात्र से प्राप्त हो जाता है। प्रयाग में जो मनुष्य बारह वर्ष तक निवास करता है उसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल श्रीसरयू के दर्शन-मात्र से प्राप्त हो जाता है। गया श्राद्ध कर जो पुरुषोत्तम भगवान् का दर्शन करता है उससे अधिक फल कलियुग में श्रीरामजी की पुरी के दर्शन से प्राप्त होता है। मथुरा में एक कल्प निवास करने से जो फल प्राप्त होता है वह फल श्रीसरयू के दर्शन-मात्र से प्राप्त होता है। योगियों को वाराणसी में शरीर त्याग करने से जो गति प्राप्त होती है वह गति एकादशी को श्रीसरयू में स्नान-मात्र से प्राप्त होती है।

पुष्कर में जाकर कार्तिक मास—कृतिका नक्षत्र में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है वह श्रीसरयू-दर्शन से प्राप्त हो

जाता है। कोटि-कल्प पर्यन्त अवन्तिका (उज्जैन) में वास करने से जो फल प्राप्त होता है वह फल श्रीसरयू दर्शन-मात्र से होता है। श्रीशिवजी कहते हैं-परमप्रकाश स्वरूप श्रीअयोध्यापुरी पर-ब्रह्म का स्वरूप है। श्रीसरयूजी सगुण साकार पुरुषोत्तम हैं। यहाँ के निवासी साक्षात् श्रीजगन्नाथजी के स्वरूप हैं यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ। इस प्रकार अलौकिक महिमा सम्पन्न पुण्यसलिला श्रीसरयूजी का श्रीरघुनन्दन ने दर्शन किया। 'तं देशम्' का अर्थ तिलककारने स्वर्ग प्राप्ति कराने वाला देश किया है। शिरोमणि-कार ने अप्रकट साकेत प्रापक देश किया है। जहाँ श्रीराघवेन्द्र परधाम गमन के लिये पधारे, ब्रह्माजी वहाँ ऋषियों के साथ पधारे। पुण्यात्माओं से आकाश दिव्य तेजोमय था। पवित्र सुग-न्धित वायु चल रही थी। देवता पुष्प की वर्षा कर रहे थे। अनेक प्रकार के नगाड़े आदि बाजे बज रहे थे। अप्सरा-समूह प्रभु के गुणगान कर रहे थे। प्रभु ने जब श्रीसरयूजी में प्रवेश किया तब ब्रह्माजी प्रभु के समीप आकर बोले-जीवों पर अनुग्रह के लिए अवतारविग्रह धारण करने वाले, विष्णुरूप श्रीराम? मेरे सौभाग्य से ही आप भ्राताओं के साथ यहाँ पधारे हैं अतः अपने स्वरूप के समान ही प्रियधाम में आप पधारें। शिरोमणिकार ने विष्णु का अर्थ व्यापक विष्णु के व्यापक श्रीराम किया है। तिलक-कारने 'स्वकां तनुम्' का अर्थ शरीर की भाँति अत्यन्त प्रियधाम किया है। 'देवाभः' का अर्थ है देव स्वरूप आपके समान ही प्रिय भ्राताओंके सहित आप प्रियधाम पधारें। 'भ्रातृभिः' में सभी भ्राताओं के सहित पधारें। इस वाक्य में भ्राताओं में बहुवचन है। अतः

भ्राताओं के साथ श्रीलक्ष्मणकुमार का भी प्रभु के साथ परधाम-गमन सूचित होता है ऐसा तीर्थ कहते हैं।

शिरोमणिकार कहते हैं कि ब्रह्माजी श्रीरघुनाथजी को स्वधाम गमन के लिए प्रार्थना कर प्रभु के साथ पधारे हुए प्रजा जनों को भी धाम वास के लिए प्रार्थना करते हैं। इन्होंने भी 'स्वकां तनुम्' का अर्थ साकेत धाम ही किया है। तिलककार पुनः कहते हैं- विष्णु सम्बन्धी शरीर से अथवा ब्रह्मस्वरूप से आप विराजमान हों, क्योंकि आकाश शब्द श्रुति में ब्रह्म का वाचक है। श्रीगोविन्दराज कहते हैं- 'स्वकां तनुम्' का अर्थ है श्रीविष्णु विग्रह तथा आकाश का अर्थ है वैकुण्ठधाम। 'त्वं हि लोकगतिर्देव' इस श्लोक का अर्थ करते हुये शिरोमणिकार कहते हैं- प्रभो! समस्त जीवों की गति निर्वाहक आप ही हैं। आपकी नित्यसंगिनी कृपामयी श्रीसीताजी के बिना आपको कोई नहीं जानता। अतः वेद आपको अचिन्त्य वैभव सम्पन्न कहते हैं। माया का अर्थ इन्हों-ने कृपामयी किया है। इसी श्लोक का अर्थ करते हुए तिलककार कहते हैं- आप लोक की गति हैं। स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति कराने वाले हैं। लोकमात्र के जानने योग्य आप ही हैं। बड़े-बड़े तपस्वी भी आपको नहीं जानते हैं। माया-ज्ञानशक्ति स्व-रूपिणी के बिना अन्य कोई नहीं जानता। विशालाक्षी विशेषण के द्वारा उनकी सर्वज्ञता कही गयी। 'पूर्वपरिग्रहाम्' इस श्लोकसे श्रवण मनन निदिध्यासन आदि के द्वारा जब इस प्रकार ज्ञान-शक्ति का प्रादुर्भाव होता है तब लोग आपको जान सकते हैं। अचिन्त्य आदि विशेषणों के द्वारा देश, काल, वस्तु, परिच्छेद

शून्य प्रभु के स्वरूप का वर्णन किया गया। गोविन्दराज ने माया का अर्थ लक्ष्मी किया है। 'पूर्वपरिग्रहाम्' का अर्थ है अनादि-काल से भगवान् के साथ नित्य विराजमान रहने वाली नित्य अनपायिनी लक्ष्मी स्वरूपिणी श्रीसीताजी। ब्रह्माजी के वचन को सुनकर श्रीरामजी ने अपने भ्राताओं के साथ सशरीर अपने धाम पधारे। 'वैष्णवं तेजः' का अर्थहै विष्णु सम्बन्धी तेज अर्थात् भगवत्स्वरूप वैकुण्ठ (साकेत) धाम। 'सहानुज' इस विशेषण से भ्राताओं के शरीर भी भगवान् के समान ही तेजोमय कहे गये। भगवान् श्रीराघवेन्द्र के साथ उनके भ्रातागण भी सशरीर पर-धाम पधारे। 'सहानुजः' इसका यह स्पष्ट अर्थ है।

'भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्विकां तनुम्' इस श्लोक की व्याख्या करते हुए श्रीगोविन्दराज ने कहा है- कि परधाम-गमन के समय भगवान् श्रीरामजी ने विष्णु शरीर धारण कर लिया, श्रीलक्ष्मणकुमार ने शेष शरीर, श्रीभरतलालजी ने गरुड़ शरीर एवं श्रीशत्रुघ्नलालने विष्वक्सेन शरीर धारण कर लिया। इस प्रकार का श्रीगोविन्दराज का व्याख्यान वाल्मीकि रामायण के मूल श्लोक से सम्बन्ध नहीं रखता क्योंकि मूल श्लोक में 'विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः' इस में अपने भ्राताओंके साथ सशरीर प्रभु दिव्यधाम पधारे—यह कहा गया है। परधाम-गमन के समय महर्षि वाल्मीकि के इस मूल श्लोक का अवश्य मनन करना चाहिये। प्रमाणपरतन्त्र विद्वद्वरिष्ठ वैष्णव तेज का अर्थ विष्णु सम्बन्धी ज्योतिर्मय धाम कहते हैं। अथर्ववेद में श्री-अयोध्याजी को ज्योतिर्मय कहा गया है। आठ चक्र, नव द्वार

वाली देवताओं की पुरी अयोध्या है जहाँ हिरण्मय कोश है। वह दिव्यधाम प्रकाश से परिपूर्ण है। श्रीअयोध्यापुरी समस्त वकुण्ठों का मूलाधार है। मूल प्रकृति से परे ब्रह्मस्वरूपिणी, शक्तिसम्पन्ना, दिव्यरत्नकोश से युक्त है। वहाँ श्रीसीतारामजी का नित्य विहार स्थल है। उसी दिव्यपरमधाम में श्रीरघुनाथजी ने अपने भ्राताओं के सहित सशरीर प्रवेश किया। सशरीर का अर्थ है कि सच्चिदानन्द दिव्यमङ्गलमयविग्रह के साथ ही श्रीरघुनाथजी ने दिव्यधाम में प्रवेश किया। यदि श्रीरामजी का शरीर मायारचित प्राकृत होता तो उस शरीर को छोड़कर ही स्वधाम पधारते किन्तु ये तो सशरीर परधाम पधारे।

श्रीभरतलालजी, श्रीलक्ष्मणकुमारजी, श्रीशत्रुघ्नलालजी, भ्रातृगण भी अपने दिव्य शरीर के साथही परधाम पधारे। इससे स्पष्ट है कि भ्राताओं के शरीर भी प्रभु के श्रीविग्रह के सदृश हो सच्चिदानन्दमय हैं। भागवत के नवमस्कन्ध में भी कहा गया है- जिन्होंने श्रीरघुनाथजी का स्पर्श किया, उनका दर्शन किया उनके साथ कुछ देर बैठे एवं उनके पीछे-पीछे कुछ दूर तक चले, वे तथा समस्त अयोध्यावासी उस परमधाम को पधारे जहाँ योगीजन जाया करते हैं। पुराणकल्प से रामायणकल्प श्रेष्ठ है इस विषय का प्रतिपादन पूर्वमें ही किया गया है। इतिहास पुराणों के द्वारा वेदार्थ का विस्तार करना चाहिये इस व्यास वचन में भी पुराण की अपेक्षा इतिहास को सभी ने पूज्य स्वीकार किया। श्रीरघुनाथजी ब्रह्माजी से बोले- मेरे साथ हुए इन जन-समूहों को आतिवाहिक (साधक को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचा

देने वाले उन-उन लोकों के अभिमानी पुरुष को आतिवाहिक (साधक को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचा देने वाले उन उन लोकों के अभिमानी पुरुष को आतिवाहिक कहते हैं।) द्वारा दिव्य लोक प्रदान करें।

'आतिवाहिकस्तल्लिङ्गात्' ब्रह्मसूत्र के इस सूत्रमें भगवान् व्यास ने इस प्रकरण का विशद विवेचन किया है। अतः प्रभु ब्रह्मा से कहते हैं कि आप इन्हें दिव्यधाम ले जाएँ। ब्रह्मविद्या से रहित इन जीवों को दिव्यधाम की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? ब्रह्माजी को इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए प्रभु कहते हैं- ये सब लोग स्नेहवश मेरे पीछे आये हैं। ये सबके सब यशस्वी तथा मेरे भक्त हैं। इन्होंने मेरे लिए अपने सभी लौकिक सुखों का परित्याग कर दिया है। अतः ये सर्वथा मेरे अनुग्रह के पात्र हैं। इस प्रकार ब्रह्मविद्या से रहित इन जीवों को दिव्य धाम की प्राप्ति कैसे होगी? इस शंका का समाधान कर दिया- क्योंकि ब्रह्मविद्या का फल भगवद्भक्ति ही है। ब्रह्मविद्या के फल मोक्ष को भी भक्ति रसिक महापुरुष अङ्गीकार नहीं करते हैं इस विषय का भागवत में सर्वत्र वर्णन है। श्रीरघुनाथजी के वचन सुनकर ब्रह्मा बोले- आपके साथ आए हुये समस्त जीव आपके धाम पधारेंगे। तिर्यग्योनि में उत्पन्न जीव भी यदि आपका चिन्तन करते हुए प्राणों का परित्याग करेंगे तो वे भी आपके धाम में जाएँगे। केवल आपके साथ आए हुये भक्त ही आपके धाम नहीं जाएँगे, किन्तु इसके पश्चात् भी जो श्रीराम भक्त होंगे, वे आपके धाम को प्राप्त करेंगे। ब्रह्मलोक के समीप ही ऊपर समस्त गुणों से नित्ययुक्त सान्तानिक लोक है जहाँ भक्तगण निवास करेंगे। यह श्रीगोविन्दराज का मत है। शिरोमणिकार कहते हैं- सत्य,

ज्ञान, आनन्द आदि ब्रह्मगुणों से युक्त गोलोक के समीप साकेत धाम में ही सान्तानिक नामक विशेष लोक हैं जहाँ भक्तगण निवास करेंगे। तिलककार कहते हैं- सत्यसंकल्प आदि ब्रह्म-गुणों से युक्त ब्रह्मलोक के समीप ही सान्तानिक लोक है। वहाँ के निवासी ब्रह्मलोक की प्राप्ति के पश्चात् ब्रह्मा के साथ ही मुक्त होंगे। ब्रह्मा के इस प्रकार कहने पर आनन्दाश्रु से परिपूर्ण साथ आने वाले तथा अन्य समस्त जीव गोप्रतार तीर्थ (वर्तमान गुप्तार घाट) पहुँच कर जो जो जीव सरयू जल में अवगाहन करता है वह अत्यन्त हर्ष के साथ प्राणों का परित्याग कर प्राकृत शरीर को छोड़कर—विमान पर विराजमान हो जाता है। स्थावर जंगम् समस्त प्राणी श्रीसरयूजी में स्नान कर साकेत लोक पधारे। समागत समस्त मुक्त जीवों को प्रभु ने अपने धाम में निवास प्रदान किया तथा वे मुक्त जीव, सदा प्रसन्न रहने वाले नित्य पार्षदों के साथ भगवान् के धाम में निवास करने लगे। 'य उत्तराननयत् कोसलान्दिवम्' जिन्होंने उत्तर कोसलवासी समस्त जीवों को साकेत धाम प्रदान किया। भागवत के इस वचन से श्रीरामायण में प्रतिपादित परधाम प्रदायक वचन की एक वाक्यता कही गयी। कामिल बुल्के आदि कुछ आधुनिक विद्वान् यह सन्देह करते हैं कि **रामायण** के बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड दोनों प्रक्षिप्त हैं। भागवत के 'कोसलान्दिवम्' इस अन्तिम श्लोक से उनके संदेह निर्मूल हो जाते हैं।

युद्धकाण्ड की समाप्ति पर श्रीरामायण की फलश्रुति कही गयी है अतः रामायण की समाप्ति युद्धकाण्ड में ही उचित प्रतीत

होती है-ऐसा आधुनिक विचारकों का तर्क है। वास्तव में विशिष्ट प्रसंगों की समाप्ति पर महर्षि ने फलश्रुति का वर्णन किया है। बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में जब मूलरामायण की समाप्ति हुई तब एक ही सर्ग के बाद फलश्रुति का वर्णन करते हुये महर्षि कहते हैं- 'ब्राह्मण यदि मूलरामायण का पाठ करे तो विद्वान् हो जायें, क्षत्रिय पाठ करे तो भूमिपति हो जाय' आदि। स्कन्दपुराण में केवल किष्किन्धाकाण्ड की कथा में ही अनेक फल-श्रुतियाँ कही गई हैं। श्रीहनुमान्जी को श्रीसुग्रीवजीने प्रभु के समीप भेजा है-इस प्रसंग के श्रवण से सद्गुरु की प्राप्ति होती है। श्रीरघुनथजी के साथ श्रीहनुमान्जी के सम्वाद का श्रवण करने से राज्य की प्राप्ति होती है। श्रीराघवेन्द्र तथा श्रीसुग्रीव के वार्तालाप को सुनकर मनुष्य दुःख से मुक्त हो जाता है। वालि के बल कीर्तन से विद्यावल, दैवबल, ज्ञान-बन्धुबल तथा सैन्यबल की प्राप्ति होती है। प्रभुके द्वारा तालों एवं पर्वतों का भेदन, किष्किन्धा में सुग्रीव का आगमन, तथा वालि सुग्रीव के युद्ध की कथा श्रवण कर मनुष्य विजय की प्राप्ति करता है। तारा का प्रलाप, वालि का निधन तथा कपीन्द्र वालि के दाह-संस्कार की कथा सुनकर स्त्रियाँ सौभाग्यवती होती हैं, पुत्रवती होती हैं एवं उनके पति चिरंजीवी होते हैं। तारा तथा रूमा की प्राप्ति सुग्रीव के अभिषेक की कथा सुनकर मनुष्य को राज्य की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार 'मारुति प्रेषण से सुग्रीव राज्य प्राप्ति पर्यन्त कथाओं की फलश्रुति स्कन्दपुराण में वर्णित है' इसी प्रकार युद्धकाण्डमें रावण का वध हुआ, श्रीराघवेन्द्र का राज्याभिषेक हुआ

अतः रावण वध के पश्चात् महर्षि ने फलश्रुति का वर्णन किया। श्रीरामायणके नामकरणके समय रामायण का एक नाम 'पौलस्त्य वध' भी किया गया है, अतः रावण वध के पश्चात् फलश्रुति का वर्णन करना उचित ही था। साथ ही श्रीराम-राज्याभिषेक प्रसंग तो अत्यन्त मंगलप्रद प्रसंग था अतः राज्याभिषेक के पश्चात् फलश्रुति का वर्णन करना उचित ही था। वास्तव में युद्धकाण्ड के अन्त में वर्णित फलश्रुति राज्याभिषेक की ही फलश्रुति समझनी चाहिये। युद्धकाण्ड के अन्त में कहा गया है 'यह रामायण सम्पूर्ण है।' वास्तव में इस वचन से भी यहाँ रामायण की समाप्ति नहीं होती क्योंकि 'छह काण्ड तथा उत्तर' इस वचन से रामायण का सप्तकाण्डात्मक होना सुप्रसिद्ध है।

श्रीनागेशभट्ट, श्रीगोविन्दराज, शिरोमणिकार, तीर्थ आदि समस्त टीकाकारों ने श्रीरामायणको सप्तकाण्डात्मक मानकर ही भिन्न-भिन्न टीकायें लिखी हैं। स्वामी श्रीरामानुजाचार्य ने श्रीशैलपूर्ण स्वामी से अठारह बार श्रीरामायण का श्रवण किया था। उन्होंने स्वामीजी को अठारह अर्थ बतलाये थे। उन्हीं अर्थों का विवेचन श्रीगोविन्दराज ने स्थल-स्थल पर किया है। साथ ही उन्होंने अपने पूर्वाचार्यों की परम्परा से प्राप्त अनेक गूढ़ रहस्यों का भी विवेचन किया है।

हम आधुनिक विचारकों से पूछना चाहते हैं कि क्या अनेक शास्त्र निष्णात श्रीगोविन्दराज भ्रान्त थे? क्या व्याकरण शास्त्र के महामनीषी श्रीनागेशभट्ट भ्रान्त थे? कतक-शिरोमणिकार एवं माहेश्वर तीर्थ आदि टीकाकार भ्रान्त थे? वास्तव

में ये सभी टीकाकार ऋतम्भरा प्रज्ञा से सम्पन्न, श्रोत्रिय ब्रह्म-निष्ठ महापुरुष थे। इनकी पाण्डित्यपूर्ण टीकाओं के अनुशीलन से ही विद्वज्जनों को ज्ञात हो जायगा कि श्रीगोविन्दराज आदि टीकाकार महानुभाव प्रामाणिक विद्वान् थे अथवा मिस्टर याकोवी कामिल बुल्के आदि विदेशी विद्वान् प्रामाणिक हैं?

इन आधुनिक विचारकों के तर्क के अनुसार यदि उत्तर-काण्ड को प्रक्षिप्त मान लिया जाय तो श्रीमद्भागवत पद्मपुराण आदि सैकड़ों ग्रन्थों में श्रीरघुनाथजी के परधामगमन सम्बन्धी चरित कैसे उपलब्ध हैं? यदि उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त होता तो श्री-लवकुश के जन्म की ही सिद्धि नहीं होगी, फिर बालकाण्ड में उन के द्वारा श्रीरामायण का गान भी व्यर्थ हो जायगा, ऐसी दशा में समस्त रामायण ही लुप्त हो जायगी। उत्तरकाण्डमें वर्णित श्री-हनुमच्चरित भी प्रक्षिप्त हो जायगा। बालकाण्डको प्रक्षिप्त मान लिया जाय तो श्रीरघुनाथजी का अवतार, श्रीविश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा, ताड़का, सुबाहु आदि का वध, अहल्याजी का उद्धार, शिवजी के धनुष का भंग, श्रीसीताजी का विवाह एवं परशुराम पराजय आदि की कथायें कैसे सिद्ध होंगी तथा इन चरित्रों के विना सातकाण्ड श्रीरामायण की कथा कैसे सिद्ध होगी? क्या श्रीजानकीजी के विवाह के विना श्रीरामायण की पूर्ति हो सकती है? श्रीजानकीजी के विना श्रीराघवेन्द्र वन जा सकते थे? श्री-सीताजी के हरण के विना रावण का वध हो सकता था!

मिस्टर बुल्के कहते हैं कि श्रीउर्मिलाजी, माण्डवीजी, श्री-श्रुतिकीर्तिजी के नाम अयोध्याकाण्ड में नहीं आये हैं अतः बाल-

काण्ड प्रक्षिप्त है। किन्तु श्रीउर्मिलाजी आदि के नाम तो पाँच अन्य कांडों में भी नहीं है तब तो अयोध्याकाण्डसे लेकर युद्धकाण्ड पर्यन्त पाँच काण्ड भी प्रक्षिप्त हो जायँगे।' शूर्पणखा के प्रति प्रभु ने परिहास करते हुये कहा था कि श्रीलक्ष्मणकुमार 'अकृतदार' हैं—बुल्केजी ने इस प्रकार भी आक्षेप किया है कि यदि श्रीलक्ष्मण कुमार विवाहित होते तो प्रभु उनको अकृतदार क्यों कहते? वस्तुतः अकृतदार का अर्थ सभी टीकाकारों ने 'असहकृतदार' किया है—श्रीलक्ष्मणजीके साथ उनकी पत्नी नहीं हैं अकृतदार का यही अर्थ है। यदि अकृतदार का अर्थ अविवाहित भी करें तो भी परिहास वचन होने के कारण दोषयुक्त नहीं है। परिहास में ऐसे वचनों का प्रयोग शास्त्रसम्मत है।

मिस्टर बुल्के की पुस्तक 'रामकथा' (उत्पत्ति और विकास) में मुख्यरूप से अवतारवाद पर प्रहार किया गया है। बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त कहने के पश्चात् भी जब उनको सन्तोष नहीं हुआ तब उन्होंने लंकाकाण्ड के परत्त्व प्रतिपादक श्लोकों को प्रक्षिप्त कह दिया, क्योंकि लंकाकाण्ड में मन्दोदरीजी ने श्रीराघवेन्द्र के असाधारण परत्त्व का वर्णन किया है। ब्रह्मस्तव में श्रीब्रह्माजी ने सर्वोत्कृष्ट परत्त्व का वर्णन किया है। अवतारवाद का प्रबल प्रतिपादन तो युद्धकाण्डमें ही हुआ है। युद्धकाण्ड को प्रक्षिप्त कहने का साहस बुल्केजी को नहीं हुआ तब उन्होंने श्रीराघवेन्द्र की भगवत्ता के प्रतिपादक श्लोकों को ही प्रक्षिप्त कह दिया। उन्होंने इतना तो स्वीकार किया है कि परत्त्व प्रतिपादक श्लोक सभी पाठों में मिलते हैं फिर इन श्लोकों को प्रक्षिप्त कहने में क्या प्रमाण है? यदि अवतारवाद के समर्थक श्लोक प्रक्षिप्त हैं तो सभी टीकाकारों ने उनपर विस्तृत टीकायें क्यों लिखी?

बालकाण्ड में श्रीपरशुरामजी ने कहा है—मुझे निश्चित रूप से ज्ञात हो गया कि आप मधु दैत्य को मारने वाले अवि—

साक्षी सुरेश्वर विष्णु हैं। अयोध्याकाण्ड में कहा गया है कि परम प्रचण्ड रावण के वध की कामना वाले देवताओं की प्रार्थना पर साक्षात भगवान् विष्णु ही मर्त्यलोक में अवतीर्ण हुए थे। उन्हें बाल तथा अयोध्याकाण्डमें उपर्युक्त अवतार बोधक दो ही श्लोक मिले। अयोध्याकाण्ड में श्रीसुमित्राजीके वचन का न तो उन्होंने अध्ययन किया न श्रवण किया। जहाँ श्रीराम को पुरुषोत्तम, सूर्य का सूर्य, अग्नि का अग्नि, ईश्वरों का ईश्वर, श्री के श्री, देवताओं का देवता कहा गया है। श्रीविश्वामित्रजी भी श्रीराघवेन्द्र के अवतार स्वरूप को नहीं जान सके ऐसा उनका मत है। वास्तव में श्रीविश्वामित्रजी ने अवतार स्वरूप को भलीभाँति जान लिया था, उन्होंने कहा है—सत्यपराक्रम, महात्मा श्रीराम को मैं जानता हूँ श्रीवसिष्ठजी भी जानते हैं तथा अन्य तपस्वीगण भी जानते हैं। युद्धकांड में श्रीरामजी ने ब्रह्मा से कहा—मैं अपने–आपको मनुष्य, दशरथनन्दन श्रीराम ही मानता हूँ। मेरा जो स्वरूप है, जिससे सम्बन्धित हूँ, जहाँ से आया हूं, आप ही बतलाइये। इस श्लोक का उपयोग तो कामिल बुल्केजी ने अपनी पुस्तक में किया किन्तु इस श्लोक के उत्तर में जो कुछ ब्रह्माजी ने कहा उसका उपयोग उन्होंने नहीं किया क्योंकि ब्रह्माजी के उत्तर में अवतारवाद का सम्यक् निरूपण किया गया है। 'आप नारायणदेव हैं' यहाँ से लेकर (जो लोग ब्रह्मस्तव के द्वारा आपकी स्तुति करेंगे उनका पराभव नहीं होगा) इस श्लोक पर्यन्त इन इक्कीस श्लोकों के द्वारा लोक पितामह ब्रह्मा ने श्रीरघुनाथजी के असाधारण परत्व का वर्णन किया है इसकी चर्चा भी उन्होंने नहीं की यह महान् आश्चर्य है। कामिल बुल्के महोदय ने बड़े परिश्रम से अपनी पुस्तक लिखी है। श्रीराम भगवान् नहीं हैं यही उनकी पुस्तक का मुख्य तात्पर्य है। यद्यपि अपने मतानुयायियों की प्रसन्नता के लिए ही उन्होंने यह प्रयास किया,

किन्तु अभी भी असंख्य लोग श्रीराम को भगवान् मानते हैं यह जानकर उनके चित्त में अवश्य अत्यन्त खेद होगा। उनकी पुस्तक पढ़ने वालों के हृदय में भी भगवान् श्रीराम अवतार रूप से सदा विराजमान रहेंगे ऐसा मेरा विश्वास है। अतः पुस्तक लिखने का उनका वास्तविक तात्पर्य सिद्ध न हो सका। यद्यपि हनुमदुपदेश में उनकी पुस्तक की सम्यक् समीक्षा मैंने नहीं की किन्तु शीघ्रही स्वतन्त्र प्रबन्ध के द्वारा उनकी समीक्षा करने का विचार है। इस लघु प्रबन्ध के द्वारा श्रीमद्भागवत वर्णित श्रीरामचरित का रसास्वादन मैंने किया। यदि श्रीराम भक्ति रसिक महानुभाव इस प्रबन्ध का आदर करेंगे तो मैं अपना सौभाग्य समझूँगा। वास्तव में श्रीसीतारामचरणस्मरणानन्द की सिद्धि केलिए ही इस प्रबन्ध का व्याख्यान मैंने किया है। मंगलाचरण में मैंने निवेदन किया है श्रीसीतारामचरणस्मरणानन्द सिद्धि के लिए सीतारामशरण सन्तोंके उच्छिष्ट का रसास्वादन करता है। सन्तोंके उच्छिष्ट (सीथ प्रसादी) के सेवन से भजनानन्द की सिद्धि होती है यह परम्परा वैष्णव-सम्प्रदाय में अत्यन्त सुप्रसिद्ध है। अतः श्रीपराशरभट्ट, श्रीलोकाचार्य, श्रीवरवरमुनि, श्रीकुरेशस्वामी, श्रीवत्सांक मिश्र, श्रीरंगनाथ मुनि आदि दाक्षिणात्य आचार्यों के वचनों का मैंने इस ग्रंथ में संग्रह किया है। श्रीधरस्वामी, श्रीवीरराघव, श्रीजीव-गोस्वामी, श्रीविश्वनाथचक्रवर्ती आदि श्रीमद्भागवत के टीका-कारों के वचनों का भी रसास्वादन किया है अतः उनके पाद-पद्मों में हमारी कोटिशः प्रणति है। स्वामी श्रीहर्य्याचार्य, स्वामी-श्रीहरिदास प्रभृति आचार्यों की सूक्तियों से इस प्रबन्ध को विभूषित किया गया है अतः उनके उपकारों को मैं शिरसा वहन करता हूँ।

"श्रीसीतारामार्पणमस्तु"

